BANC-134

पुरातात्विक मानवविज्ञान के मूलतत्व

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. डी.के. भट्टाचार्य पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रो. राजन गौड़ मानवविज्ञान विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
प्रो. रंजना रे पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, कोलकाता विश्वविद्यालय, कोलकाता	डॉ. रुखशाना ज़मान मानवविज्ञान संकाय सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
प्रो. ए.पापा राव पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, एस.वी. विश्वविद्यालय, तिरुपति	डॉ. पल्ला वेंकटरमना मानवविज्ञान संकाय सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
प्रो. रश्मि सिन्हा मानव विज्ञान संकाय सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	डॉ. के. अनिल कुमार मानवविज्ञान संकाय सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुरातात्विक मानवविज्ञान

खंड	इकाई लेखक
खंड 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान का परिचय	
इकाई 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान का उद्भव और कार्य क्षेत्र	डॉ. पी वेंकटरमना , मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. प्रो. डी.के. भट्टाचार्य पूर्व प्रोफेसर मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
इकाई 2 पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध	प्रो. रंजना रे, (सेवानिवृत्त) मानव विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता
इकाई 3 पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ	प्रो. रंजना रे, सेवानिवृत्त, मानवविज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता डॉ. पी. वेंकटरमना, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
इकाई 4 पुरातत्व मानवविज्ञान के अंतः विषयक दृष्टिकोण	डॉ. क्यू. माराक, मानवविज्ञान विज्ञान, नार्थ–इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (नेहू)
खंड 2 काल–निर्धारण पद्धतियाँ और अतीत की रचना	
इकाई 5 काल–निर्धारण की पद्धतियाँ	प्रो. राजन गौर, मानवविज्ञान विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़.
इकाई 6 जलवायु पुनर्निर्माण की पद्धतियाँ	डॉ. एस.ए.ए. लतीफ, जेनटिक्स एवं बायोटेक्नोलॉजी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
इकाई 7 नूतन जीव महाकल्प चतुर्थ महाकल्प के विशेष संदर्भ में	प्रो. राजन गौर, मानवविज्ञान विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़.
खंड 3 प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की समझ	
इकाई 8 प्रागैतिहासिक प्रौद्योगिकी	डॉ. क्यू. माराक, मानवविज्ञान विभाग, नार्थ–इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (नेहू).
इकाई 9 प्रागैतिहासिक प्रारूप–वर्गीकरण	डॉ. क्यू. माराक, मानवविज्ञान विभाग, नार्थ–इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (नेहू).
इकाई 10 सांस्कृतिक कालक्रम	डॉ. क्यू. माराक, मानवविज्ञान विभाग, नार्थ–इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (नेहू).
इकाई 11 दुनिया में संस्कृति के शुरूआती साक्ष्य	प्रो. रंजना रे, सेवानिवृत्त, मानवविज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता
सुझावित पाठ्य सामग्री अध्ययन	

पाठ्यक्रम समन्वयक : डॉ. पी. वेंकटरमना, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली.

सामग्री संपादन : प्रो. राजन गौड़ मानवविज्ञान विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, डॉ. पल्ला वेंकटरमना, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली.

भाषा एवं सामान्य संपादन : डॉ. पल्ला वेंकटरमना, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली,

डॉ. पंकज उपाध्याय, अकादमिक परामर्शदाता, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू नई दिल्ली.

अनुवादक : विजय काचरू, एसोशिएट प्रोफेसर (सेवानृवित्त) इतिहास विभाग, पीजीडीएवी कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

कवर डिजाइन : डॉ. मोनिका सैनी, अकादमिक परामर्शदाता, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू नई दिल्ली.

अकादमिक परामर्शदाता: डॉ. पंकज उपाध्याय, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू नई दिल्ली.

सामग्री निर्माण

राजीव गिरधर सहायक कुलसचिव (प्रकाशन) सा.नि.वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली	श्री हेमन्त कुमार अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन) सा.नि.वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली

अक्टूबर 2020

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN :..................................

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : ऐजूकेशनल स्टोर्स, एस–5, बुलन्दशहर रोड़ इण्डस्ट्रीयल एरिया, साईट–1 गाजियाबाद (उ.प्र.)–201009

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अध्ययन विषय–सूची

खंड 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान का परिचय **9**

इकाई 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान का उद्भव और कार्यक्षेत्र 11

इकाई 2 पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध 27

इकाई 3 पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ 43

इकाई 4 पुरातत्व मानवविज्ञान के अंतःविषयक दृष्टिकोण 59

खंड 2 काल–निर्धारण पद्धतियाँ और अतीत की रचना **71**

इकाई 5 काल–निर्धारण की पद्धतियाँ 73

इकाई 6 जलवायु पुनर्निर्माण की पद्धतियाँ 89

इकाई 7 नूतन जीव महाकल्प चतुर्थ महाकल्प के विशेष संदर्भ में 105

खंड 3 प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की समझ **117**

इकाई 8 प्रागैतिहासिक प्रौद्योगिकी 119

इकाई 9 प्रागैतिहासिक प्रारूप–वर्गीकरण 133

इकाई 10 सांस्कृतिक कालक्रम 151

इकाई 11 दुनिया में संस्कृति के शुरूआती साक्ष्य 171

सुझावित पाठ्य अध्ययन **190**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

पुरातात्विक मानवविज्ञान, मानवविज्ञान की मुख्य शाखाओं में से एक है जो लिपि के आविष्कार से पहले मानवजाति की उत्पत्ति और विकास से संबंधित है। यह शाखा मानव अतीत, मानव व्यवहार और सांस्कृतिक तरीकों की रचना, वर्णन एवं व्याख्या, भौतिक अवशेष जैस खाद्य, उपकरण, हड्डियाँ, हथियार, कपड़े, गहने, निवास–गृह आदि के द्वारा करती है। पुरातात्विक मानवविज्ञान की विषयवस्तु प्राचीन सभ्यताओं के सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के अन्वेषण, उत्खनन और खोजे गए शिल्पतथ्यों के विश्लेषण से संकेंद्रित होती है।

पाठ्यक्रम प्रस्तुति

पुरातात्विक मानवविज्ञान के वर्तमान पाठ्यक्रम में सिद्धांत के तीन खंड है। प्रत्येक खंड को विषय संबंधित इकाइयों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड में इकाइयों को प्रागैतिहास के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझने और अभिज्ञान पर ध्यान केंद्रित करते हुए विषयगत रूप से व्यवस्थित किया गया है। इसके अतरिक्त, इकाइयाँ पृथ्वी, जीवन रसायन, भौतिक, सामाजिक और व्यवहार विज्ञान आदि से जुड़ी तकनीकों का वर्णन करके अध्ययन के वैज्ञानिक प्रकृति पर भी प्रकाश डालती हैं।

खंड 1 जिसमें चार परिचयात्मक इकाईयाँ शामिल हैं। इकाई 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान के इतिहास, उद्देश्य, परिभाषा और व्यापकता की रूपरेखा बताता है। इकाई 2 मानवविज्ञान की विभिन्न शाखाओं और जीवविज्ञान, भौतिक और पृथ्वी विज्ञान जैसे अन्य संबद्ध विषयों के साथ इसके संबंधों की व्याख्या करता है। इकाई 3 में पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन के विभिन्न तरीकों का विवरण दिया गया है। इस इकाई में पुरातात्विक स्थलों पर जानकारी और भौतिक अवशेषों के माध्यम से मानव अतीत को जानने के लिए पुरातात्विक मानवविज्ञान में नियोजित विभिन्न पद्धतियों पर जानकारी भी शामिल है। इकाई 4 हमें बताती है कि कैसे अन्य विषयों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली विधियों और दृष्टिकोणों का उपयोग पुरातात्विक मानव विज्ञान को समझने में किया जाता है।

खंड 2 (इकाई 5 से इकाई 7 तक) काल–निर्धारण पद्धतियों, जलवायु रचना की पद्धतियों और नूतन जीव महाकाल के कालानुक्रमिक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करके अध्ययन के वैज्ञानिक पहलू पर प्रकाश डालता है। इकाई 5 सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों काल–निर्धारण पद्धतियों का एक व्यापक वर्णन प्रदान करती है। इकाई 6 में, जीवाश्म, जीवजंतु और भूवैज्ञानिक साक्ष्यों से व्यत्पन्न जलवायु रचना की विभिन्न पद्धतियाँ बताई गई हैं। इकाई 7, नूतन जीव महाकल्प के महत्व का अन्वेषण करती है।

खंड 3 (इकाई 8 से इकाई 11 तक) विभिन्न प्रस्तर उपकरणों की निर्माण की तकनीक और प्रागैतिहासिक और आध–ऐतिहासिक सांस्कृतिक काल के प्रस्तर उपकरणों का वर्णन करता है। इकाई 8 और 9 पुरापाषाण, मध्यपाषाण और नवपाषाण काल के विभिन्न प्रस्तर उपकरण प्रकारों और उनके निर्माण तकनीकों का वर्णन करता है। इकाई 10 महापाषाण और ताम्रपाषाण काल के साथ उपर्युक्त काल की प्रमुख सांस्कृतिक कालानुक्रमिक घटनाओं पर विस्तृत विवरण देती है। अंत में इकाई 11 ओल्डवाई गार्ज, उबेदिया, दमनसी, अतिरमपक्कम और ईसनपुर स्थलों पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए दुनिया में संस्कृति के सबसे पहले प्रमाणों का वर्णन करती है।

संक्षेप में यह पाठ्यक्रम मानव अतीत और संस्कृतियों का एक समग्र रूप प्रदान करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BANC-134
पुरातात्विक मानवविज्ञान के मूल तत्व

खंड

1

पुरातात्विक मानवविज्ञान का परिचय

इकाई 1
पुरातात्विक मानवविज्ञान का उद्‌भव और कार्य क्षेत्र 11

इकाई 2
पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध 27

इकाई 3
पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ 43

इकाई 4
पुरातत्व मानवविज्ञान के अंतःविषयक दृष्टिकोण 59

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 पुरातात्विक मानवविज्ञान का उद्भव और कार्यक्षेत्र*

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 प्रागैतिहास / पुरातात्विक मानवविज्ञान

1.2 पुरातत्व मानवविज्ञान की परिभाषा

1.3 उद्भव और विकास

1.3.1 त्रय युग प्रणाली (थ्री एज सिस्टम)

1.4 भारत में प्रागैतिहासिक पुरातत्व के विकास का इतिहास

1.5 पाषाण संस्कृति

1.5.1 पुरापाषाण संस्कृति

1.5.2 मध्य पुरापाषाण संस्कृति

1.5.3 उच्च पुरापाषाण संस्कृति

1.6 मध्यपाषाण संस्कृति

1.7 नवपाषाण संस्कृति

1.8 प्रागैतिहासिक पुरातत्व/पुरातत्वीय मानवविज्ञान का कार्य क्षेत्र

1.9 सारांश

1.10 संदर्भ

1.11 आपकी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर

अधिगम के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समर्थ होंगेः

- मानवविज्ञान और इसकी शाखाओं की परिभाषा देने में;
- प्रागैतिहासिक पुरातत्व के विकास की विवेचना करने में; और
- विभिन्न सांस्कृतिक कालों को जानने में।

1.0 प्रस्तावना

मानवविज्ञान मानवों का अध्ययन है। शाब्दिक दृष्टि से मानवविज्ञान की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द *एन्थ्रोपस* जिसका अर्थ है 'मानव' और *'लोगोस'* जिसका अर्थ है, अध्ययन। अतः मानवविज्ञान को मानवों के पूर्णतवादी अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता

*योगदानकर्ता– डॉ. पी वेंकटरमना, मानवविज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. एवं प्रो. डी.के. भट्टाचार्य पूर्व प्रोफेसर मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

है। तदानुसार मानवविज्ञान का वर्णन मानव के सांस्कृतिक और जैविक विभिन्नता और विकास के रूप में किया जा सकता है। मानवविज्ञान को मोटे तौर पर चार शाखाओं में विभाजित किया जा सकता हैः सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान, शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान, पुरातत्व मानवविज्ञान और भाषा का मानवविज्ञान। इन चारों शाखाओं की परिभाषा इस प्रकार हैः

सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान : यह शाखा मुख्य रूप से वर्तमान अथवा हाल के समय की जनसंख्या की सांस्कृतिक विभिन्नता से सम्बन्ध रखती है। इसके विषयो के अंतर्गत मानव संस्कृति के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक पहलू आते हैं।

शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान : यह जैविक रूपान्तरण की प्रक्रिया, आनुवांशिक विरासत, मानव अनुकूलनशीलता और रूपान्तरण, नर–वानर आकृति–विज्ञान एवं मानव विकास जीवाश्म शोध का अध्ययन है।

पुरातात्विक मानवविज्ञान : पुरातत्वीय मानवविज्ञान अथवा ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक अतीत के समाज–सांस्कृतिक आचरण का अध्ययन है। पुरातत्वविद अतीत के समाजों के अवशेष जैसे कि उपकरण/औजार, आश्रय का स्थान, ऐसे वनस्पति और पशुओं के अवशेष जिन्हें आहार के रूप में लिया जाता था, तथा अन्य वस्तुऐं जिनके अवशेष आज तक विद्यमान है, का अध्ययन करते हैं। इन अवशेषों को शिल्प–तथ्य कहा जाता है और अतीत के समाज–सांस्कृतिक आचरण के पुनानिर्माण में इस्तेमाल किया जाता है। इसी के साथ प्रागैतिहासिक संस्कृति के विकास की आद्य मानव के जैविक विकास के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह अतीत का मानवविज्ञान है।

भाषिकी मानवविज्ञान : भाषिकी मानवविज्ञान भाषाओं का अध्ययन है। उच्चारित भाषा एक ऐसा आचरण है जो एकमात्र मानव में दिखाई देता है। मानवविज्ञान के इस उपकार्य क्षेत्र का सम्बन्ध सामान्यतः असाक्षर समाजों की भाषाओं के विश्लेषण और इसके विकास की सामान्य प्रवृति से है।

अपनी प्रगति जांचें

1. मानवविज्ञान की विभिन्न शाखाऐं कौन सी है?

   ....
   ....
   ....
   ....

मानवविज्ञान की भिन्न शाखाओं की परिभाषा के अध्ययन के बाद, अब हम पुरातत्वीय मानवविज्ञान की शाखा का गहराई से अध्ययन करेंगे।

पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन से पूर्व, यह अति आवश्यक है कि हम इतिहास, आद्य इतिहास एवं प्रगितिहास की परिभाषिक शब्दावली को जानें।

वह काल जिसका लिखित प्रमाण उपलब्ध है और जिसका प्रयोग उस काल के अतीत को समझने के लिए एक मुख्य स्रोत के रूप में किया जाता है, वे इतिहासिक काल है। यह काल लगभग 1000 ईसा पूर्व से वर्तमान तक है। आद्य इतिहास वो पूर्व काल है जब मानव व्यवस्थित जीवन के कारण सभ्यतो व नगरीय केन्द्रों का विकास हुआ और जिसका लिखित प्रमाण उपलब्ध तो है, परन्तु लिपि का अर्थ अभी निकाला नही जा

सका। भारत में हड़प्पा सभ्यता इसी श्रेणी में आती है। इस काल का आरंभ लगभग 3000 ईसा पूर्व में हुआ। आद्य इतिहास से पहले का समय प्रगितिहास की श्रेणी में आता है। यह लगभग तीस लाख वर्षों पूर्व से 3000 ईसा पूर्व तक कालांकित किया गया है। आद्य इतिहास की पुरातत्वीय मानवविज्ञान भी कहा जाता है।

1.1 आद्य इतिहास/पुरातात्विक मानवविज्ञान

आद्य इतिहास शब्द का पहली बार 1851 में डैन्यल विल्सन ने अपनी पुस्तक ''द आर्किलॉजी एंड प्रीहिस्टिोरिक ऐनॅल्स ऑफ स्कॉटलैंड" में प्रयोग किया। 1865 में प्रकाशित सर जोन लुबोक की पुस्तक प्रीहिस्टोरिक टाइम्स ने इस शब्द को लोकप्रिय बनाया। पुरातत्तवीय मानवविज्ञान का सम्बन्ध लिपि के आविष्कार से पूर्व मानवजाति की उत्पत्ति और विकास से है। अभी हाल के समय तक पुरात्तवीय मानवविज्ञान के विषय और प्रणाली–विज्ञान को आद्य इतिहास या आद्य ऐतिहासिक पुरातत्तव कहा जाता था, और यह मानवविज्ञान तथा पुरातत्तव विद्या विशेषों का अंश रहा है। मानवविज्ञान में इसका जोर जीव–सांस्कृतिक विकास और पुरातत्तव में प्राचीन वस्तुओं के वर्णन पर रहा है। हाल के वर्षो में आद्य ऐतिहासिक पुरातत्तव ने कई वैज्ञानिक विषयों की तकनीक के द्वारा सिद्धान्त और पद्धति प्रणाली के क्षेत्र में क्षमता प्राप्त की, और पुरातत्तवीय मानवविज्ञान का स्वरूप ले लिया। वर्तमान काल में यह उपविषय सिद्धान्त और प्रणाली–विज्ञान का अपना ढाँचा सूत्रबद्ध कर रहा है। पुरातत्तवीय मानवविज्ञान अब मानवशास्त्रीय अध्ययननों में बहुत महत्व प्राप्त कर रहा है, क्योंकि मानवविज्ञान के सम्पूर्ण स्वरूप की विज्ञानिक सूचना जुटाने में यह अनिवार्य हो गया है। अमरीका में इसे मानवशास्त्रीय पुरातत्व या साधारणत पुरातत्व और यूरोप व भारत में इसे पुरातत्तवीय मानवविज्ञान कहा जाता है। कुछ विद्वान मानवविज्ञान और पुरातत्तव को अलग विषय के रूप में देखते हैं, जिनके विकास और परम्परा का स्वतंत्र इतिहास है। परन्तु बहुत से इस बात से सहमत है कि दोनों अन्योन्याश्रित, परस्परसंबंधित, अन्तः सम्बद्धित विषय हैं जैसे की डीएनए का दोहारा कुण्डल अविच्छेद्य है, क्योंकि दोनों मानवजाति का अध्ययन करते हैं, एक वर्तमान संस्कृतियों के अध्ययन से सम्बन्धित है तथा दूसरा लुप्त अथवा अतीत संस्कृतियों से।

1.2 पुरातत्व मानवविज्ञान की परिभाषा

पुरातत्व मानवविज्ञान को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है, जैसे कि ''मृतों का मानवविज्ञान'', ''लुप्त समाजों का नृजाति–वर्णन", ''लुप्त संस्कृतियों का अध्ययन", ''पुरातत्व मानवविज्ञान का भूतकाल या साधारणतः मानव अतीत का अध्ययन जो ऐसे विगत भौतिक वस्तुऐं पर आधारित है जिनको योजनाबद्ध खोज व खुदाई से प्राप्त किया गया और जिन्हें विविध वैज्ञानिक पद्धतियों और सिद्धान्तों के द्वारा वर्णित, विश्लेषित, और व्याख्यायित किया जाता है। ब्रेन फागों (2016) के अनुसार पुरातत्व, मानवविज्ञान का एक विशिष्ट रूप है जहाँ भौतिक अवशेषों का इस्तेमाल लुप्त मानव समाजों के अध्ययन में किया जाता है। हालांकि, पुरातत्तव को ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ने ''स्थलों के उत्खनन और भौतिक/प्राकृतिक अवशेषों की व्याख्या के द्वारा मानव इतिहास और प्रगितिहास के अध्ययन के रूप में इसे परिभाषित किया है। इसका अंतिम उद्देश्य हर समय और सभी स्थानों पर सभी मनुष्यों के बारे में सामान्यीकरण करना है। विशेष रूप से इसके तीन मुख्य लक्ष्य हैंः (1) सांस्कृतिक कालक्रम का निर्माण (2) लुप्त जीवनपथ का पुनर्निमाण और (3) जैव–सांस्कृतिक प्रक्रिया की खोज।

उपर दी हुई परिभाषा से हम समझते हैं कि प्रागैतिहासिक पुरातत्व / पुरातत्व मानवविज्ञान का अध्ययन भौतिक अवशेषों द्वारा अध्ययन किया जाता है। अब हम संक्षेप में प्रागैतिहासिक विषय के उदभव और विकास की चर्चा करेंगें।

अपनी प्रगति जांचें

2. पुरातत्व मानवविज्ञान क्या है?

....

....

1.3 उद्भव और विकास

युरोपीय देशों में, पुरातत्व की शुरूआत इटली में पुनर्जागरण के समय से देखी जा सकती है, जब अतीत के बारे में और प्राचीन ग्रीस और रोम की सूचना पुनः प्राप्त करना (प्रतिप्राप्ति) में एक नई जिज्ञासा थी। यह जिज्ञासा इटली से दूसरे यूरोपीय देशों तक तेजी से प्रसारित हुयी। 16वीं शताब्दी के अंत और 17वीं शताब्दी के दौरान कई पुरातात्विक थे और शास्त्रीय प्रतिमा का संग्रह अमीरों का शौक बन गया था। अमीरों ने निजी संग्रहों का निर्माण किया जिनमें से कुछ अंततः संग्रहालय बन गए। ऐसे एक उदाहरण 1683 में बनाया गया ऑक्सफार्ड का एशमोलन संग्रहालय था, जिसमें न केवल शास्त्रीय कला की वस्तुएं थी बल्कि मानवविज्ञान की कलाकृतियाँ, जो विदेशों से वापस लाए गए थे। फिर 19वीं शताब्दी में डार्विन के 'प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का विकास' विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक था। 19वीं शताब्दी वह अवधि थी जब पुरातत्व स्पष्ट रूप से परिभाषित अध्ययन के विषय के रूप में उभरा। 19वीं शताब्दी के पुरातत्वविदों की प्रमुख उपलब्धियों में से एक 'थ्री एज सिस्टम' का निर्माण था।

1.3.1 थ्री एज सिस्टम

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, प्रागेतिहासिक शिल्पकृतियों और अन्य संग्रह संग्रहालयों में डाले गए। इस दौरान डेनिश पुरातत्व–विषयक क्रिस्टयनन जुर्गसेन थामसन (चित्रः 1) कोपनहेगन में नव स्थापित नेशनल म्यूजियम ऑफ एंटीक्विटी में संग्रह की तालिका बनाने का काम सौंपा गया।

चित्र 1 : क्रिश्चन जुर्गसेन थामसन (1788–1865)

सोत्रः https://en-wikipedia-org/wiki/Christian_J%C3%BCrgensen_Thomsen

उन्होंने सामग्री के आधार पर जिनसे शिल्पकृतियाँ निर्मित थी, व्यवस्थित रूप से संग्रह की तीन अवधियों में वर्गीकृत किया : पाषण युग, कांस्य युग, और लौह युग। थॉमसन ने इन अवधियों को काल क्रमानुसार क्रमबद्ध किया। क्रम में पाषाण युग प्रारम्भिक और लौह युग नवीनतम है।

थ्री एज सिस्टम (चित्र : 2) समस्त पुरातत्व के लिए आधार बना। राष्ट्रीय संग्रहालय के लिए उनकी मार्गदर्शिका/संदर्शिका 1836 में प्रकाशित हुई थी, जिसने अकादमिक दुनिया में थ्री एज सिस्टम का विचार पेश किया था। हालांकि, थ्री एज सिस्टम पहले ही स्वीकार किया गया था और इसे प्रकाशित होने तक अग्रणी स्कैंडिनेविन पुरातत्वविदों द्वारा उपयोग किया जाता था।

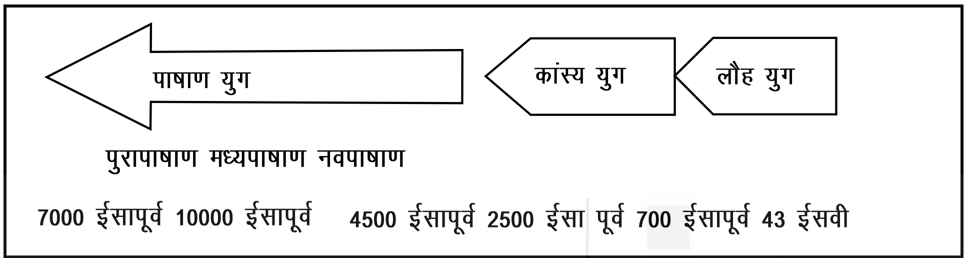

चित्र 2 : थ्री एज सिस्टम

स्रोत : https://www-schoolsprehistory-co-uk/tag/prehistory/

थॉमसन ने पाषाण युग को पुरातन पाषाण युग और नवीन पाषाण युग में विभाजित किया। लब्बॉक ने पुरातन–पाषण युग की पुरापाषण युग और नवीन पाषाण युग की नवपाषाण युग शब्दों द्वारा बदल दिया। बाद में पुरापाषाण युग और नवपाषाण युग के बीच क्रमिक रूप से एक सांस्कृतिक अवस्था मिली। इस संस्कृति को मध्यपाषाण संस्कृति के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह दोनों संस्कृतियों के बीच स्थित है।

अपनी प्रगति जांचें

2. थ्री एज सिस्टम की परिभाषा बताइए।

....

....

चित्र की तिथियां यूरोप में उपलब्ध तिथियों पर आधारित है। पुरापाषाण संस्कृति की तिथि शेष पुरानी दुनिया में और भी पीछे तक जाती है।

सम्पूर्ण प्रागैतिहासिक अतीत की निम्नलिखित संस्कृतिक युगों में विभाजित किया गया है:

प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग

ताम्रपाषाण अथवा ताम्र युग

नवपाषाण युग

मध्यपाषाण युग

पुरापाषाण युग

उपरोक्त पाँच तैथिक–सांस्कृतिक चरणों में से हमारे साम्यावादी इतिहास की सबसे शुरूआती तीन (पाषाण युग) लगभग तीस लाख वर्ष की अवधि तक फैली हुई है,

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

क्योंकि धातु को पहली बार 4000 ईसा पूर्व खोजा गया था। दूसरे शब्दों में, यह बताता है कि हमारे सांस्कृतिक इतिहास का 99 प्रतिशत अतीत केवल पाषाण युग के अन्तर्गत आता है।

1.4 भारत में प्रागैतिहासिक पुरातत्व के विकास का इतिहास

कई विद्वानों ने प्रागैतिहासिक स्थलों की खोज के माध्यम से भारत में प्रागेतिहास के विकास में योगदान दिया है। अध्ययनों में से कुछ पर नीचे चर्चा की गई है।

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत में कर्नल मीडोज टेलर भारत के पुरातत्व में रूचि दिखाने वाले आरम्भिक विद्वानों में से एक थे। हालांकि, उनकी रूचि दक्षिण भारतीय महापाषाण पर अधिक केंद्रित रही। 1861 में अलेकजेंडर कनिंघम और 1863 में रॉबर्ट ब्रूस फुट ने बाद की अवधि में प्रागैतिहासिक पुरातनताओं की खोज और अभिलेखन शुरू किया। अलेक्जेंडर कनिंघम ने ऐतिहासिक काल पर ध्यान केंद्रित किया, लेकिन रॉबर्ट ब्रूस फुट अपने दिलचस्पी में अधिक समावेशी थे, जो कि प्रारम्भिक पाषाण युग तक विस्तृत हो गया। रॉबर्ट ब्रूस फुट ने भारत में चेन्नई के पास पल्लवारम नामक उद्योग स्थल पर एक हस्तकुठार, पहला पुरापाषाण प्रस्तर उपकरण खोजा। इसलिए रॉबर्ट ब्रूस फुट को ''भारतीय प्रागैतिहासिक का जनक'' कहा जाता है। बाद में ऐ.सी. कार्लेली ने 1863–65 के दौरान महापाषाण गुफा चित्रों के साथ मिर्जापुर के चट्टान आश्रयों में लघुपाषाण की खोज की।

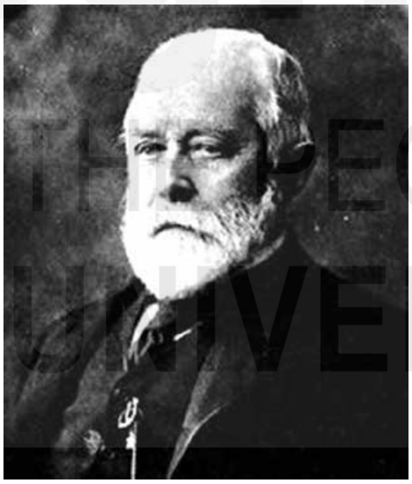

चित्र 3 : रॉबर्ट ब्रूस फुट (1834–1912)

स्रोतः https://en-wikipedia-org/wiki/Robert_Bruce_Foote

पाषाण युग संस्कृति का एक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। पाषाण युग संस्कृति को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

1. पुरापाषाण संस्कृति
2. मध्यपाषाण संस्कृति
3. नवपाषाण संस्कृति

1.5 पुरापाषाण संस्कृति

''पुरापाषाण'' शब्द प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की पूरी श्रंखला को संदर्भित करता है जो अत्यंतनूतन काल के/अंतर्गत आता है। कृपया भूवैज्ञानिक समय पैमाने (इकाई

6) देखें। मूल काल–निर्धारण के अनुसार इस अवधि का रूढ़िवादी अनुमान 28 लाख से 1,60,000 के बीच कहीं भी होगा। फिर उसी विधि पर भारत में पूर्व पुरापाषाण युग का अस्तित्व 15 लाख वर्षों पूर्व लिया गया है। आज हमारे पास पूर्व पाषाण युग के उद्योग–स्थलों से कई मूल तिथियाँ है जो मानव के आगमन की तिथि की उस तिथि तक वापस बढ़ा ले जाती है जो भूतिथिकी के द्वारा तय की हुई तिथि से दस गुना अधिक है। मिसाल के तौर पर चेन्नई के पास अतिश्मपक्व में, पूर्व पाषाण युग 15 लाख वर्ष है, कर्नाटक में इस्लामपुर में उसी संस्कृति की तिथि 12 लाख वर्ष होने के अनुमान है। महाराष्ट्र में, बोरो और गोरेगांव दो पुर्व पुरापाषाण उद्योग स्थल हैं जिनकी तिथि 600,000 साल से अधिक है।

पुरापाषाण संस्कृति को आगे तीन अवधि में विभाजित किया गया है, अर्थात् पूर्व पुरापाषाण, मध्य पुरापाषाण और उत्तर पुरापाषाण।

1.5.1 पूर्व पुरापाषाण संस्कृति

भारत में पूर्व पुरापाषाण संस्कृति 25 लाख वर्षों से 1,00,000 वर्षों पूर्व तक दिनांकित है। इस काल की विशेषता स्फटिक और मुख्य प्रस्तर उपकरण जैसे की गंड़ास और खंडक के उपकरण, हस्तकुठार, विदारणी और खुरचनी है। इस संस्कृति को मोटे तौर पर एश्युलियन संस्कृति के रूप में नियत किया गया है।

भारत ने हिमालयी क्षेत्र में हिमानी और हिम प्रत्यावर्तन अवस्था का पर्यायक्रमिक अनुभव किया था। प्रायद्वीपीय क्षेत्र में जलवायु वृष्टयार्वतन और वृष्टि–प्रत्यावर्तन अवधियों में बदलता रहता था। इसका मतलब है कि नम और शुष्क जलवायु का प्रत्यावर्तन था। पूर्व पुरापाषाण संस्कृति भारत में व्यापक रूप से वितरित है। भारत–गंगा मैदानी क्षेत्र के अलावा भारत के सभी राज्यों से उद्योग–स्थल पाए जाते हैं। यह क्षेत्र मानव निवास के लिए अभी तक उपयुक्त नही था। यहां कई कार्यों का उल्लेख किया गया है।

डी टेरा और पैटरसन भारत आए और 1939 में रावलपिंडी के पास सोहन नदी–सोपान पर अपनी खोज प्रकाशित की। अत्यंत नूतन भूगर्मीय काल में हिमालय के हिमावर्तन और हिमप्रत्यावर्तन जलवायु अवस्थाओं के कारण सोहन नदी घाटी के साथ पाँच सीढ़ीदार सोपान बन गए थे। द्वितीय हिमावर्तन काल के दौरान हिमनदी शिलाखण्ड निक्षिप्त किए थे। बाद में द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन काल के अंतिम हिमवर्तन काल के दौरान सोपान बन गए थे। सोपान का संदर्भ एक विशिष्ट आदि अत्यंत नूतन भूगर्मीय जीव एलिफिस हाइस्ड्रिकस की उपस्थिति से पता चला था, जिसे हिमालय के लोग करवा कहते हैं, के साथ प्रत्यक्ष संबंध में पाया जाता है। हिमावर्तन काल और हिमप्रत्यावर्तन काल से संबंधित बडी संख्या में उपकरण पाए गए और दिनांकित किए गए। इनमें से प्रारम्भिक शिलाखण्ड पिण्ड से मिले को पूर्व सोहन कहा जाता है और जो बाद के सोपान से पाए गए को आदि सोहन कहा जाता है, अन्य जगह के उपकरणों को अंत सोहन कहा जाता है और आखिर में अंतिम सोपान के उपकरणों को विकसित सोहन कहा जाता है। हालांकि दोनों, आदि सोहन और अंत सोहन को कई कालानुक्रमिक पद्धतियों में विभाजित किया गया है। पूरे सोहन घाटी में उपकरण समूह चॉपर और खंडक उपकरणों की भारी विविधता दिखाते हैं। हालांकि आदि सोहन निश्चित रूप से पूर्वपाषाण से संबंधित है, सांकलिया का मानना था कि अंत सोहन मध्य पुरापाषाण संस्कृति से संबंधित है।

हिमालयी क्षेत्र के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में भी काम किया गया था। चेन्नई के पास कोटील्लायर नदी घाटी में महत्वपूर्ण पूर्व पाषाण उद्योग स्थल मिले हैं। ये पल्लवारम,

वादामदुराई और अतिरमपक्कम हैं। जनवरी 1980 में प्रोफेसर वी एन मिश्रा ने राजस्थान के नागौर जिले के डिउवान शहर के पास सिंगी तालाब नामक एक समृद्ध एश्यूली उद्योग स्थल की एक बहुआयामी जांच आयोजित की थी। मिश्रा ने महसूस किया कि उपकरण प्राथमिक संदर्भ में होने के पर्याप्त सबूत दिखाते हैं। उत्खनन तीन अलग–अलग चरणों को दिखाता है। इन्हें जयल, अमरपुरा और दीडवान संरचनाऐं कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जयल समूह की संरचना तृतीय महाकल्प और पूर्व अत्यंतनूतन काल के दौरान हुई थी। ये एक अत्यंत शक्तिशाली जल निकासी बल दिखाते हैं। करीब 16 किमी के फैलाव तक 20 मीटर से 60 मीटर मोटाई के ठोस शिलाखंड का जमाव पाया गया है। इस अवधि के तुरंत बाद अमरपुरा चरण के दौरान मानव आधिपत्य सुनिश्चित हो गया। अमरपुरा के मध्य अंश से एश्यूली उपकरण पाए जाते है और मध्य पुरापाषाण उपकरण इसी चरण के ऊपरी अंश पाए जाते हैं। तिथि को मध्य और उत्तर मध्य अत्यंतनूतन के बीच कही भी लिया जाता है। जलोढ़ भू–कालक्रम के साथ तुलना करने पर यह हिमालयी क्षेत्र के बोल्डर पिंड अथवा प्रथम बजरी से सीमेंटेड बजरी अथवा द्वितीय बजरी तक विस्तारित अवधि के अनुरूप होना चाहिए।

इसके बाद पाँच प्राथमिक उद्योग स्थलों की खोज की गई। ये हैं: मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में भीमबेटका और होशंगाबाद जिले से आलमपुर, महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले से चिर्की नेवासय , बिहार के जमुई जिले से पईसरा और कर्नाटक के बेल्लारी जिले से हँस्गी। इन सभी उद्योग स्थलों की अतिसावधानी से खुदाई की गई थी लेकिन उनमें से किसी में भी पूर्व पुरापाषाण एक से अधिक स्तरों में नहीं देखा जाता है। इसके अतिरिक्त लगभग इन सभी उद्योग स्थलों में अत्यधिक प्रचुर मात्रा में उत्तर एश्यूली उपकरण दिखाई देते हैं जो काफी अच्छी संख्या में गंड़ास और खंडक उपकरणों के संग पाये जाते हैं। भीमबेटका में कम से कम गुफा 111 एफ–23 में कोई गंडासा नहीं दिखाता है, लेकिन शायद यह पहाड़ों के शीर्ष पर कंकड की अनुपलब्धता के कारण हो सकता है। यह भी स्पष्ट है कि एक विकसित एश्यूली चरण से पहले एक प्रारंम्कि एश्यूली चरण अथवा मोड 1 संग्रह भारत से अब तक किसी भी स्तरीय संदर्भ में प्रदर्शित नही है।

अपनी प्रगति जांचें

4. पूर्व पुरापाषाण संस्कृति के बारे में आप क्या समझते हैं ?

....

....

1.5.2 मध्य पुरापाषाण संस्कृति

बड़ी मात्रा में शल्क (फ्लेक)उपकरणों की मौजूदगी मध्य पुरापाषाण संस्कृति की पूर्व पुरापाषाण से अलग पहचान देती है। इन उपकरणों को शल्क के अलग करने से पहले कोर को सावधानीपूर्वक तैयारी करके बनाया जाता है। युरोप में मध्य पुरापाषाण संस्कृति को मुस्तीरी संस्कृति के रूप में भी जाना जाता है। भारत में कोई तुलनीय मुस्तीरी संस्कृति नहीं मिली है लेकिन तैयार कोर तकनीक को भारत में मध्य पुरापाषाण संस्कृति के लिए प्रमाणचिन्ह के रूप में माना जाता है। संकालिया ने इस संस्कृति को महाराष्ट्र में नेवासा उद्योग स्थल से खोजा। मध्य पुरापाषाण संस्कृति उत्तर अत्यंत नूतन युग के दौरान विकसित हुई। इस चरण की मूल काल–निर्धारण पद्धति 1,00,000 से 40,000 वर्षों की समय सीमा को इंगित करती

है। यहां उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि पूर्ववर्ती पाषाण युग से भिन्न, जिसके लिए हमारे पास एक से अधिक प्राथमिक उद्योग स्थल हैं, ताकि हमें अतीत में जीवनशैली का पुनर्निमाण करने में सक्षम बनाया जा सके, इस प्रकार के मध्य पुरापाषाण उद्योग स्थल अभी भी दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त जबकि कुछ नदी घाटियों से मध्य पुरापाषाण संस्कृति के साक्ष्यों की विशाल संद्रता प्राप्त की है, वहीं ऐसी नदी घाटियां है जहां ऐसे साक्ष्य इतने विशिष्ट नही हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इससे पूर्व में कई लोगों का मानना था कि मध्य पुरापाषाण भारत में मध्य और दक्कन क्षेत्र की एक घटना है, भीमबेटका एक उत्कृष्ट मुस्तीरी उद्योग को एक उत्तर एश्यूली तल के भीतर से विकसित होते हुए दिखाता है। यहां कच्चा माल भी पिछली अवस्थाओं से कायम है। सौ किलोमीटर दूर शिवना में, नर्मदा घाटी के मुख्य मध्य पुरापाषाण, महीन कच्चे माल के पूर्ण परिवर्तन के कारण पूरी तरह से विर्दशीय दिखते हैं। महाराष्ट्र और कर्नाटक एक विशिष्ट लेवलाएज आधारित मध्य पुरापाषाण को अपनाते हैं इसलिए मुस्तीरी विशेषता के करीब आते हैं, क्षीण पत्ते के आकार के चूलदार अस्त्राग्र भी इस क्षेत्र से विदित हैं।

1.5.3 उत्तर पुरापाषाण संस्कृति

उत्तर पुरापाषाण संस्कृति हाल के अत्यंत नूतनकाल से संबंधित है। व्यापक रूप से जिसे उत्तर पुरापाषाण काल के 40000 ई.पू से 8000ई.पू के बीच माना जाता है। भारत में एक विशिष्ट सांस्कृतिक अवस्था के रूप में उत्तर पुरापाषाण अभी भी उससे तुलनीय नहीं है, जो हम इस परिभाषिक शब्द से दक्षिण पश्चिम फ्रांस में या यूक्रेन में समझते है। इन क्षेत्रों में उत्तर पुरापाषाण संस्कृति का प्रतिनिधित्व बड़ी संख्या में फलक और तक्षणी समूह द्वारा किया जाता है। यह अनिवार्य रूप से भारत के अधिकांश हिस्सों के लिए एक प्रतीकात्मक रूप से पहचानों जाने वाली अवस्था है। पुनर्गठित फलकों की प्राचुर्य मात्रा भारत में उत्तर पुरापाषाण संस्कृति के लिए भी महत्वपूर्ण है। हड्डी के उपकरण और कला वस्तुएं जो यूरोप में उत्तर पुरापाषाण की एक विशिष्टता है, भारत में लगभग अनुपस्थित है। यह याद रखना है कि सब मिलाकर भारत एक उप–कटिबंधीय मानसून देश है। हड्डियों और जैव पदार्थ को शायद ही संरक्षित किया जाता है। इस लुप्त विशिष्टता के कारण पश्चिम और भारत के कई विद्वान भारत के उत्तर पुरापाषाण के दावे को संदेह के साथ लेते रहे हैं। कुछ विद्वानों ने उत्तर पुरापाषाण के स्थान पर सभी अंतिम अत्यंतनूतन संस्कृतियों के लिए वैकल्पिक शब्द फलक–तक्षणी संस्कृति का प्रस्ताव दिया।

भारत में जो निश्चित रूप से उत्तर पुरापाषाण संस्कृतियां हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

(I) रेनिगुटाः एम.एल.के. मूर्ति ने तिरूपति के मंदिर–शहर के पास रल्ला–कल्लावा नदी के साथ तीन–चार इलाकों की सूचना दी। वेदुलाचरूवु और नल्लागुंडलू नामक इन इलाकों से उत्तर पुरापाषाण लघु पाषाण से साथ मिश्रित रूप में प्राप्त हुआ।

(II) मचयटका चिंतमनी गावीः आंध्र प्रदेश के कुरनुल जिले में मूर्ति द्वारा उपरोक्त नाम के एक गुफा उपकरण स्थल खुदाई की गई थी। यह तुरंत प्रसिद्ध हो गया क्योंकि यहां पहली बार, उत्तर पुरापाषाण की हड्डी उपकरण घटक के साथ प्राथमिक संदर्भ से प्रदर्शित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत आश्मिक उद्योग केवल 9.70 प्रतिशत, जबकि हड्डी उद्योग

90.30 प्रतिशत था। अधिकांश फलकों का पुनर्गढ़न नही हुआ है। इनके अलावा एक तक्षणी और चार पुनर्गठति शलकों की पहचान की गई थी।

(III) भीमबेटकाः मध्य प्रदेश के रायसेन जिले के इन गुफाओं और चट्टान शरण स्थलों पर हम पूर्व पुरापाषाण के साथ चर्चा की जा चुकी है। गुफा संख्या III एफ–23 में उत्खनन से मध्य पुरापाषाण और मध्यपाषाण के बीच एक संग्रह प्राप्त हुआ है, जिसका स्वरूप विशिष्ट रूप से उत्तर पाषाण है। वहां 6 सेमी से 10 सेमी लंबे फलक होते हैं और उन पर बने उपकरण को चित्रित किया गया है। आमतौर पर सचित्र प्रकारों में 814 सेमी फलक जिसे तक्षणी में पुनर्गठित किया है, अत्यंत खुरचनियां, पार्श्व पुर्नगठित लेड और ग्रवेतीय अस्त्राग्र होते हैं।

1.6 मध्यपाषाण संस्कृति

मध्यपाषाण संस्कृति वह संस्कृति है जो भूवैज्ञानिक युग के प्रारंभिक भाग में निखरी। मध्यपाषाण संस्कृति के लोग आखेटक–संग्राहक थे। वहां की अर्थव्यवस्था कृषि से पहले की थी। भारत में यह काल 8000 ईसा पूर्व और 6000 ईसा पूर्व के बीच पनपा। इसकी विशेषता छिद्रित और दबाव शल्कन तकनीकी द्वारा तैयार लघुपाषाणिक उपकरणों का पूर्ण रूप से अनुकूलन। इस प्रकार के उपकरणों का विकास अत्यंत नूतन काल में अच्छी तरह से हुआ है, उदाहरण के लिए कुरनूल में ज्वालापुरम और श्रीलंका में बाटा डोम्बा लेना में लघु पाषाण 40,000 ईसा पूर्व पाए जाते हैं लेकिन यह नूतनतम काल के दौरान अपने पूर्ण रूप में और प्रमुख उपकरण प्रकार के रूप में उभरा।

नीचे दी गई कुछ उपकरण स्थल हैं जहाँ भारत में मध्य पाषाण संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

(I) **तिलवाडा और बागौर** : पश्चिमी राजस्थान में तिलवाडा भारत में सबसे दूर पश्चिमी मध्य पाषाण उद्योग स्थल है और बाडमेर जिले में लगभग रेगिस्तान के किनारे स्थित है। वी.एन. मिश्रा ने 1971 में इस उद्योग स्थल का उत्खनन किया और दो अलग–अलग विशिष्ट अवस्थाओं का विवरण दिया। इसकी पूर्व अवस्था स्पष्ट रूप से मध्य पाषाण बस्ती प्रतीत होती है। युवा अवस्था में लोहे के टुकडे, कांच के मनके और कई चाक पर बने मृदभांड।

बागौर भीलवाडा जिले में एक और उद्योग स्थल था जो कि तिलवाडा समूह का विस्तार प्रतीत होता है। यहाँ 1.5 मीटर निक्षेप की खुदाई की गई थी और इसके भीतर तीन विशिष्ट संस्कृतिक अवस्थाओं की पहचान की गई थी। अवस्था I, 180 सेमी गहराई पर है। यहाँ से प्रचुर मात्रा में लघुपाषाण और कई पशु हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इस अवस्था का रेडियोकार्बन वर्ष 5000–2800 ईसापूर्व है। अवस्था 1 मध्य पाषाण संस्कृति के अंतर्गत आता है। अवस्था 11 से ताम्र उपकरण, मृदभांड और सामान्य लघुपाषाण प्राप्त हुए। अंतिम और उपरवाली अवस्था III से पात्र ठिकरों के अलावा लौह के औजार प्राप्त हुए। इस अवस्था की तिथि 600 ईसापूर्व से 200 ईस्वी है। इस उद्योग स्थल से लगभग 6 फीट के कंकाल जिनके पैर कटे हुए थे का विस्तरित शवाधान पाया गया है। बागौर के लघुपाषाण बेहद छोटे है और माप में केवल कुछ मिलीमीटर के है। ये अवस्था केवल मध्यपाषाण स्वरूप में है।

(II) **भीमबेटका और आदमगढ़** : ये दोनों रायसेन (भीमबेटका) और होशंगाबाद (आदमगढ़) में नर्मदा नदी के दोनों और गुफाओं और चट्टान शरण स्थलों के समूह हैं। हमेशा की तरह दोनों उद्योग स्थलों से जानवरों की हड्डियाँ और

मानव शवाधान के साथ प्रचुर मात्रा में लघुपाषाण प्राप्त हुए है। खुदाई सामग्री के अलावा भीमबेटका से एक संकेत यह है कि मध्यपाषाण काल के दौरान, गुफा की मुंह के पास पत्थरों का ढेर लगा कर के एक ओट या दिवार बनाने का प्रयास किया गया था।

भीमबेटका और आदमगढ़ दोनों गेरू के विभिन्न रंगों से विशाल मात्रा में चट्टान कला को क्रियान्वित करते दिखते हैं। यशोधर मथपाल ने कला प्रकृति का अध्ययन किया है और मध्यपाषाण संस्कृति की कई आर्थिक गतिविधियों को प्रमाणित किया है। इनमें मत्स्य–ग्रहण, आखेट, लघुपाषाण आरोपित तीर और मत्स्यमाला है।

(III) टेरी उद्योग स्थल : लघुपाषाण समूह के 11 उद्योग स्थलों का एक समूह तमिलनाडु के तिरूनेवली जिले में जीवाश्म रेत के टीलों के साथ पाए जाते हैं। इन्हें आमतौर पर टेरी उद्योग स्थल के रूप में जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि समुद्र के पूर्व अतिक्रमणों ने इन रेत के टीलों का गठन किया था। प्रारम्भिक नूतनतम काल के दौरान और बाद के परिवर्तन के दौरान तीन क्रमिक स्तरों पर टीले, वर्तमान तट से लगभग 10 किमी दूर भूमि पर बनाए गए थे। इन अतिक्रमण समुद्र तटों में एक को लगभग 5000 ईसा पूर्व निदांकित किया गया है। इन टीलों को समेकन की प्रक्रिया के दौरान लघुपाषाण का अधिपत्य हुआ।

अपनी प्रगति जांचें

5. भारत में मध्य पाषाण संस्कृति के विभिन्न उद्योग स्थल कौन से हैं।

....

....

1.7 नवपाषाण संस्कृति

नवपाषाण काल (नए पाषाण युग) मध्यपाषाण के बाद की अवधि थी जब मानव इतिहास में गहरा परिवर्तन हुआ था। कृषि, जानवरों को पालतू बनाना, मृदभांड का निर्माण, और पीसने और चमकाने की तकनीक की इस अवधि में शुरूआत की गई थी। दुनिया के एक से अधिक केंद्रों पर पौधों के सुधार की प्रक्रिया विकसित हुईः निकट पूर्व, दक्षिण–पूर्व एशिया और मेसो–अमरीका। कृषि और पशुपालन का प्रभाव जबरदस्त था। समुदाय लगभग बस गए थे और नियमित भोजन आपूर्ति के कारण जीवन अधिक सुरक्षित हो गया। वहाँ अच्छे से विनियमित समुदायिक जीवन विशेषज्ञता का विकास और श्रम विभाजन था जैसे बुनाई और मृदभांड। नवपाषाण संस्कृति के बाद की अवस्था में संपत्ति के अवधारण के विकास के परिणामस्वरूप भूमि, मवेशी और उपकरणों आदि के स्वामित्व की प्रणाली का विकास हुआ जो अंततः संघर्ष, झगड़े और युद्धों की और ले जाता है। पशु को पालतू बनाने ने कृषि प्रगति को और भी तेज कर दिया। भारत में यह संस्कृति देश की लंबाई और चौड़ाई में पाई जाती है। नवपाषाण संस्कृति के लिए कुछ प्रमाण नीचे दिए गए है।

भारत–पाकिस्तान सीमा : कृषि आधारित नवपाषाण बस्तियाँ, जो केवल पत्थर के उपकरणों का उपयोग करते थे, कई दशकों से बलुचिस्तान के पहाड़ी इलाके में किली गुल मुहम्मद, रानाधुंदाई आदि जैसे उद्योग स्थलों से जानी जाती है। उनकी शुरूआत 4000 ईसा पूर्व की थी। हालांकि मेहरगढ़ में खुदाई ने उपमहाद्वीप में बसने वाले गाँव के जीवन की पुरातनता का 7000 ईसा पूर्व तक वापस धकेल दिया है।

यह उद्योग स्थल बलुचिस्तान में बोलन के पास है और इसकी खुदाई 1954 में जारिग और लेर्चेवैलियर ने की थी। यहाँ सात अवस्थाएँ पाई गई है, जिन में से अवस्थाऐं I-III नवपाषाण कालीन है। अवस्था 1 को 7000–5500 ईसा पूर्व दिनांकित किया गया है। अवस्था 1ए के प्रमुख खोजों में पॉलिशदार पत्थर के उपकरण, लघुपाषाण और हड्डी के उपकरण शामिल है। संभावित रूप से अर्थव्यवस्था में आखेट, पशुपालन और पौध–रोपण शामिल थे। पालतू–पशुओं में मवेशो, भेड़ बकरी और जल भैंस शामिल थे– जबकि कृषि पौधों में गेहूं और जौ की कई किस्में शामिल थी। घर मिट्टी और मिट्टी की ईंटो से बने थे।

आसाम समूह : इस क्षेत्र से पाए गए उपकरणों में संकलित और ढ़लुआ किस्मों के पत्थर कुल्हाड़ी शामिल है। जो अधिकतर सतह पर पाये गये हैं। इन्हें असम में दाओजली हादिंग और सारूतारू तथा मेघालय में सेलबालग्रे की खुदाई में मिले डोरी छाप मृदमांड के साथ, भौतिक साक्ष्य बनाते हैं। मृदभांड हस्तनिर्मित और अशुद्ध मिट्टी के है। दाओजली हैडिग उत्तरी कछार पहाड़ियों, असम से एक स्तरीकृत नवपाषाण उद्योग स्थल है जहाँ बडी संख्या में घरेलू उपकरणों जैसे कि मकई चक्की पिसनहारा, ओखली, मूसली, चक्की और मूसली की उपस्थिति के कारण इस क्षेत्र के नवपाषाण निवासियों द्वारा खाद्य उत्पादन के अप्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में अनुमान लगाया गया है। यहाँ भी बडी मात्रा में पिसाई पत्थर और उपोत्पाद शल्क पाए गए हैं। दूसरी तरफ अरूणाचल प्रदेश में कमला घाटी की एक खुदाई स्थल पारसीपरलो ने लौह से पूर्व नवपाषाण संस्कृतियों को दिखाया है। अधिकतर चोंच प्रहार और घिर्स पत्थर के औजार के साथ कुछ ठिकरे – चौकोर जाली और छत्रा थापी छपे हुए मृदभांड पाए गए। कुछ अंगीठियाँ, राख और काठकोयले के निक्षेपण के साथ पाए गए। हालांकि कोई इमारती अवशेष नही देखे गए जो ये संकेत देते है कि पारसीपरले एक बाहरी स्थल था। सेलबलग्रे, मेघालय में गारो पहाडियाँ का स्थल एक स्तरित स्थल निकला जहाँ ज्यामितीय और गैर–ज्यामितीय लघुपाषाण पर नवपाषाण की अवस्था उपस्थिति पाई गई। नवपाषाण काल ने हस्तनिर्मित मृदभांड, बहुत मोटे और रंग में घुसर या मलिन भूरे दिखायी दिए। उत्तर–पूर्व भारत में नवपाषाण काल के लिए कोई रेडियोकार्बन तिथियाँ उपलब्ध नही है। हालांकि एच.डी. सांकलिया ने अनुमान लगाया कि इस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृतियाँ 5000 ईसा पूर्व से 1000 ईसापूर्व के समय के भीतर हो सकती थी।

दक्षिण क्षेत्र : कुछ अपवादों को छोड़ के तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक से प्राप्त परिणाम समान है। पूर्व चरण में, लघुपाषाण और घिसे पत्थर के उपकरणों के साथ हस्तनिर्मित मोटे फीके–लाल मृदभांड पाए गए थे। बाद के चरण में, हस्तनिर्मित–हल्के चिकने घूसर भांड, घीसे पत्थर उपकरण जैसे की कुल्हाड़ी, बसूला, छेनी आदि और हड्डी अस्राग्र, मनके और मृणमूर्ति पाए गए। शवोत्खनन के साथ में व्यस्कों के लिए पत्थर की कब्र का सामान और शिशुओं के लिए कलश दफन का उपयोग किया गया था। राख टीले *(गाय के गोबर को जला कर राख बनाना)* उट्नुर में पशु गाला और बाड़ा के सबूत के साथ पाए गए थे। वे निवास स्थलों के साथ निकटता से जुडे हुए हैं और अर्थव्यवस्था में मदेशी ग्राम्य जीवन के बारे में संकेत देते हैं। ऐसा माना जाता है कि मवेशी बाडा में गोबर को जमा होने दिया जाता था और समय–समय पर आग लगाई जाती थी, शायद अनुष्ठानिक तरीके से जैसे आज भी दक्षिण भारत में वार्षिक मवेशी त्योहारों किया जाता है। टीले में राख की कई अलग परतें होती हैं। कुछ परतों में यह नरम और ढीला होता है और दूसरों में भारी होता है, यह बताता है कि गोबर को अलग–अलग तापमान पर जला दिया गया था। राख के भीतर की सामग्री में

पत्थर और हड्डी के उपकरण, पशु हड्डियाँ और मृदभांड हैं। उटनूर (महबूबनगर, आंध्र प्रदेश) और बुदिहाल (गुलबर्गा जिला, कर्नाटक) में मवेशियों के खुर के निशान गोबर के नीचे पाए गए हैं जो मवेशी बाडा के साक्ष्य दिखाते हैं। बुदिहाल में एक कसाईखाना के भूमितल के प्रमाण भी प्रस्तुत है। पशुपालन स्पष्ट रूप से उनकी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था क्योंकि 85 प्रतिशत हड्डियां पालतू मवेशी, भैंस, भेड़ और बकरी से संबंधित थी। खेती की गई पोटेड बाजरा, दालें और फलियाँ थी। घर शायद टट्टर और मिट्टी के बने हुए थे– संगनाकल्लू से जले हुए झोपड़ी के साक्ष्य से पता चलता है कि झोपड़ियों में छत फूश की थी। यह नवपाषाण संस्कृति C14 तिथि–निर्धारण के द्वारा 3000–1000 ईसा पूर्व दिनांकित की गई है।

यह बहुत स्पष्ट है कि जहाँ तक भारत में नवपाषाण का संबंध है, इसके विभिन्न सांस्कृतिक लक्षण है। जहाँ तक समय अवधि का सवाल है, भारत में 7000 ई.पू. मेहरगढ़ संस्कृति से लेकर 1000 ई.पू. तक असमस की संस्कृति में बहुत उतार–चढ़ाव देखे हैं। संबंधों के संदर्भ में, ऐसा लगता है कि छोटानागपुर क्षेत्र को छोड़कर, जिनके दक्षिण के साथ कुछ संबंध हो सकते हैं, प्रत्येक क्षेत्र के शुरूआती कृषक समुदाय एक–दूसरे से अलग थे इनमें से, भारत–पाकिस्तान के समुदाय पश्चिम एशिया, उत्तर में उत्तर–पूर्व से लेकर दक्षिण में गंगा घाटी और दक्षिण–पूर्व का इलाका एशिया से पूर्वोतर से प्रेरित लगता है। वास्तव में, पूर्वोत्तर भारत जो बहुत रणनीतिक रूप से दक्षिण–पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया की सीमा रेखा में स्थित है, को कई लोगों ने प्रारंभिक चावल की खेती के केंद्रीय क्षेत्र के रूप में देखा है। गंगा घाटी में इलाहाबाद के पास कोल्डिवा में, धान की खेती के प्रमाण मिलते है, जो 5000 ईसा पूर्व दिनांकित हैं।

1.8 प्रागैतिहासिक पुरातत्व / पुरातात्विक मानवविज्ञान का कार्यक्षेत्र

प्रागैतिहास आरंभिक आखेट – संग्रहक और बाद के कृषि समुदायों के जीवन का उल्लेख करता है। यह विषय मानव समाजों के बारे में प्रमाण प्रदान करता है जो सभ्यताओं/नगरीयकरण (रेनफ्रु और बाह्न, 1991) को जन्म देते हैं। प्रागैतिहास न केवल लेखन के आगमन से पहले प्रारंभिक मानव के जीवन का अध्ययन करता है बल्कि वर्तमान काल के समुदायों का भी अध्ययन करता है जो आखेट–संग्राहक, चारागाही या आदि–किसान के रूप में अभी जारी हैं। इस तरह के अध्ययन वर्तमान समुदायों के बीच तुलनीय प्रागैतिहासिक समाजों की जीवन शैली ओर सांस्कृतिक प्रणालियों के लिए साक्ष्य प्रदान करते हैं।

संस्कृति पृथ्वी पर अपने उत्तरजीविता के लिए मनुष्य का एक साधन है। चूंकि इसमें वातावरण से निकाली गई सामग्रियाँ शामिल है यह उनकी काया का हिस्सा नही है, इसलिए इसे अतिरिक्त–कायिकी व्यवहार के रूप में जाना जाता है। यह दोनों स्पर्शनीय और अस्पर्शनीय घटकों से बना है। स्पर्शनीय संस्कृति का भौतिक हिस्सा है और अस्पर्शननीय ऐसे व्यवहारिक पहलू हैं जैसे रीति–रिवाज, आस्था और विचार। उत्तरार्द्ध में भौतिक अवशेषों से पुननिर्मित किया जा सकता है। गॉर्डन चाइल्ड (1956) के अनुसार प्रागैतिहासिक पुरातात्विक अध्ययन मानव क्रिया के कारण भौतिक संसार में सभी परिवर्तनों का अध्ययन करता है। आमतौर पर भौतिक अवशेष जीवित रहने के लिए दैनिक आवश्यकताएँ जैसे की भोजन, उपकरण, हथियार, कपडे, गहने घर आदि हैं। प्रागैतिहास पृथ्वी पर मानव अस्तित्व का प्रमुख भाग सम्मिलित करती है। इसमें वर्तमान काल से औसतन 5000 सालों के घटनाकाल लिखे जाते हैं। प्रागैतिहासिक काल के अधिकांश साक्ष्य प्रकृति की प्रचण्डता और लंबे समय के कारण लुप्त और नष्ट हो गए है। संस्कृति और जीवाश्मों के आंशिक साक्ष्य पाए गए हैं।

मानवविज्ञानियों ने प्रारंभिक मानव के जीवन और कार्यों के पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक पद्धति तैयार की है। संस्कृति पृथ्वी पर व्यापक क्षेत्रों में पाई जाती है और यह बाद के पर्यावरण के जवाब में बदलती है। पर्यावरण एक भौगोलिक स्थान में भिन्न होता है। पुरातत्वविद के लिए संस्कृति का क्षेत्रवार स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण, समय के साथ बदलता गया। भूविज्ञानविद मानव काल को चतुर्थयुगीन कहते है, जिसमें दो भाग हैं, पूर्व को अत्यंतनूतन काल और बाद वाले को नूतनतम काल, जो लगभग 10,000 साल पहले शुरू हुआ और अभी भी जारी है। भौतिक संस्कृति की सबसे छोटी इकाई पत्थर उपकरण और शिल्प तथ्य है। कोई भी वस्तु जो मानव के आस पास की दुनिया से ली गई और उसके द्वारा अपरिवर्तित या परिवर्तित रूप में उपयोग में लाई गई को शिल्प तथ्य कहा जाता है। उपकरण शिल्प में तथ्य हैं, जिन्हें परिवर्तित और आकृतित कर मानव द्वारा उपयोग में लाया जाता है (चाइल्ड 1956)। उपकरण, उपकरण निर्माता के उद्देश्य, उसकी आवश्यकता और निर्माण की क्षमता का प्रागैतिहासिक पुरातत्वविद को सुराग देता है।

हम अपने अतीत से अलग नही हो सकते क्योंकि विकास उस परंपरा पर निर्भर करता है जिस पर एक विशेष संस्कृति बनाई जाती है। यह एक संस्कृति और सभ्यता के क्रम को दर्शाता है। लक्ष्य और उद्देश्य को परिभाषित करने का कारण यह है कि अन्वेषण का तरीका विशिष्ट समस्या के कारण भिन्न होता है जिसे प्रागैतिहासिक विद हल करना चाहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य विश्व इतिहास (होल और होजर, 1969) के परिप्रेक्ष्य में प्रौगैतिहास के तथ्यों को प्रस्तुत करना है। प्रागैतिहासिक पुरातत्व का व्यापक उद्देश्य इस प्रकार हैः (I) संस्कृति इतिहास का पुनर्निमाण, (II) पूर्व जीवन शैली का पुनर्निमाण, (III) संस्कृति प्रक्रिया का अध्ययन (IV) सही कालक्रम का निर्माण। जातीय–पुरातत्व प्रागैतिहासिक पुरातत्व में शामिल है।

1.9 सारांश

प्रागैतिहासिक पुरातत्व को पुरातात्विक मानवविज्ञान के रूप में जाना जाता है। प्रागैतिहासिक शब्द के एक विशेष अर्थ है। यह उस समय के मानव का अध्ययन है जब लेखन ज्ञात नहीं था। दूसरे शब्दों में यह पूर्व–साक्षर समय का अध्ययन है। लिपि बहुत देर में आई, केवल पिछले 5000 सालों में और वह भी हर जगह एक साथ नहीं आयी। प्रागैतिहासिक समय अवधि के जीवन शैली को प्रारंभिक मानव द्वारा छोड़ी गई संस्कृति के साक्ष्य के आधार पर पुननिर्मित किया जाता है। इस इकाई में हमनें अपने प्रागैतिहासिक पुरातत्व के इतिहास और विकास के बारे में सीखा हैं। यह इकाई भारत में पाषाणयुग संस्कृतियों पर भी चर्चा करती है।

1.10 संदर्भ

चाइल्ड, वी.जी. (1956). *पीसिंग टूगेदर द पास्टः द इंटर्प्रिटेशन ऑफ आर्केलॉजिकल डेटा.* लंदनः रूटलेज एंड केगन पॉल.

फागन, बी.एम. (2016). *आर्कियोलॉजीः* ए ब्रीफ इंट्रोडक्शन. न्यूयार्कः रूटलेज.

होल एफ., एंड होजर, आर. एफ. (1969). *ऐन इंट्रोडक्शन टू प्री हिस्टोरिक आर्कियोलॉजी* . न्यूयार्कः होल्ट, रेनहार्ट एंड विस्टन.

रेनफ्रू, सी., एंड बाह्न, पी. (1991). *आर्कियोलॉजीः थ्योरीज, मैथड एंड प्रैक्टिस.*लंदनः थॉमस एंड हडसन.

1.11 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर

1. मानवविज्ञान को मोटे तौर पर चार शाखाओं में विभाजित किया जा सकता हैः सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान, शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान, पुरातत्व मानवविज्ञान और भाषा मानवविज्ञान।

2. पुरातत्व मानवविज्ञान को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है, जैसे कि ''मृतकों का मानवविज्ञान'', ''लुप्त समाजों का नृजाति–वर्णन'', ''लुप्त संस्कृतियों का अध्ययन'', ''पुरातत्व मानवविज्ञान का भूतकाल'' या साधारणतया मानव अतीत का अध्ययन जो ऐसे विगत भौतिक वस्तुयें पर आधारित हैं, जिनको योजनाबद्ध खोज व खुदाई से प्राप्त किया गया और जिन्हें विविध वैज्ञानिक पद्धतियों और सिद्धान्तों के द्वारा वर्गीत, विश्लेषित, वर्णनित और व्याख्यायित किया जाता है। ब्रेन फागों (2016) के अनुसार पुरातत्व ''मानवविज्ञान का एक विशिष्ट रूप है जहां भौतिक अवशेषों का इस्तेमाल लुप्त मानव समाजों के अध्ययन में किया जाता है।''

3. उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान डेनिश पुरातत्व–विषयक क्रिस्टयन जुर्गर्सन थाम्सेन के कार्य ने प्रागैतिहासिक संग्रह को निर्माण सामग्री के आधार पर तीन अवधियों में वर्गीकृत कियाः पाषण युग, कांस्य युग और लौह युग। थाम्सेन ने इन अवधियों को कालक्रमानुसार क्रमबद्ध किया, क्रम में पाषाण युग प्रारम्भिक और लौह युग नवीनतम है। थ्री– एज सिस्टम समस्त पुरानी दुनिया पुरातत्व के लिए आधार बनी।

4. पूर्व पाषाण संस्कृति 25 लाख वर्षों से 1,00,000 वर्षों पूर्व तक दिनांकित है। इस काल की विशेषता मुख्य प्रस्तर उपकरण, जैसे की हस्तकुठार, विदारणी, गंड़ास और खंडक उपकरण।

5. मध्यपाषाण संस्कृति के तीन महत्वपूर्ण उपकरण स्थल हैं : (I) तिलवाडा और बागौर, (II) भीमबेटका और आदमगढ़ और (III) टेरी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध*

इकाई रूपरेखा

2.0 परिचय

2.1 मानवविज्ञान और पुरातात्विक मानवविज्ञान

2.2 पुरातात्विक मानवविज्ञान

2.3 पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध

2.3.1 इतिहास

2.3.2 पृथ्वी विज्ञान

2.3.2.1 भूविज्ञान

2.3.2.2 भूगोल

2.3.3 पुरातत्व

2.3.4 भौतिकीय विज्ञान/प्राकृतिक विज्ञान

2.3.5 मानवविज्ञान

2.4 सारांश

2.5 संदर्भ

2.6 आपकी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर

अधिगम के उद्देश्य

यह इकाई आपको समझने में मदद करेगी:

- पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध;
- पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन में अन्य विषयों का किस प्रकार से योगदान होता है;
- पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन में मानवविज्ञान की भूमिका; और
- मानवविज्ञान के साथ संयोजन में अन्य विषय कैसे पुरातात्विक मानवविज्ञान के कई सवालों के जवाब प्रदान करते है, यथा जीवविज्ञान और इसके चरणों, संस्कृति, जैव–सांस्कृतिक संबंध, पर्यावरण तथा समय काल।

2.0 परिचय

पुरातात्विक मानवविज्ञान, मानवविज्ञान का एक हिस्सा है। इसे पहले प्रागैतिहासिक पुरातत्व के रूप में जाना जाता था क्योंकि इसका कोई लिखित विवरण उपलब्ध नहीं था और यह मानव का वो काल था जब लिपि की खोज नहीं हुई थी। पुरातात्विक मानवविज्ञान,यह शब्द लॉर्ड एवेरी, जिन्हें सर जॉन लबॉक भी कहा जाता है के द्वारा

*योगदानकर्ता–प्रो. रंजना रे, (सेवानिवृत्त) मानव विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय,कोलकाता

1865 में दिया गया था। (लब्बाक,1865) पुरातत्व को केवल मानवविज्ञान के संदर्भ में परिभाषित किया जा सकता है। (डोटल, 1967) पेनिमैन के अनुसार, (1965:16) पुरातत्व मानवविज्ञान का वो हिस्सा है, ''जो मानव की पुरातनता से सम्बन्ध रखता है जिसका उसके हस्तकार्य के प्रारम्भिक अवशेषों से पता चलता है और इसे पुरातत्व कहा जाता है''। मानवविज्ञान व्यापक रूप से मानव का अध्ययन है। पुरातत्व अतीत के मानव का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में पुरातात्विक मानवविज्ञान लुप्त लोगों का मानवविज्ञान है। प्रागैतिहासिक और पुरातात्विक, लुप्त लोगों का मानवविज्ञान है। प्रागैतिहासिक और पुरातात्विक मानवविज्ञान, मानवविज्ञान के क्षेत्र में समानार्थी हैं।

2.1 मानवविज्ञान और पुरातात्विक मानवविज्ञान

मानवविज्ञान को मानव के समग्र अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह विषय मानवों के अध्ययन के विविध क्षेत्रों को सम्मिलित करता है। यह समय व स्थान में मानवों की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करता है। मानवविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में न केवल इसके शारीरिक स्वरूप, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व और मानव के परिवर्तन और विकास के क्षेत्र भी आते हैं। समय व स्थान से मानवों और उनकी संस्कृति की विविधता का भी अध्ययन किया जाता है। मानवविज्ञान का व्यावहारिक महत्व भी है। मानवविज्ञान का बोध मानवजाति के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। मानवविज्ञान को कई शाखाओं में बांटा गया है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण जैविक/भौतिक मानवविज्ञान सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान, भाषाई मानवविज्ञान और पुरातात्विक मानवविज्ञान हैं। भौतिक मानवविज्ञान, मानव जाति का जीवविज्ञान, जैविक पहलुओं और मानव विकास में बदलाव का अध्ययन करता है। यह नरवानरगण (प्राइमेट) के अध्ययन से संबंधित है। जीवविज्ञान और नरवानरगण (प्राइमेट) का व्यवहार मानवों की जीवविज्ञान और संस्कृति के विकास के पुनर्निमाण के लिए महत्वपूर्ण है। सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान एक विषेष जनसमुदाय या समाज की सोच और व्यवहार के पारंपरिक तरीकों को संदर्भित करता है। इसमें भाषाओं, ध ार्मिक मान्यताओं, खाद्य प्राथमिकताओं, संगीत, कार्य प्रकृति, लिंग भूमिकाएं, अपने बच्चों का पालन–पोषण, अपने घरों का निर्माण और कई अन्य व्यवहारिक पहलुओं जिन्हें में प्रचलित रूप में लोगों के समूह सम्मिलित होते हैं। (एम्बर, एवं अन्य, 2002) भाषाई मानवविज्ञान ने वर्तमान समय में मानवविज्ञान में एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है। यह भाषा के माध्यम से लोगों का अध्ययन है, और भाषा, जीवविज्ञान और संस्कृति के बीच संबंध का अध्ययन है।

पुरातात्विक मानवविज्ञान सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान का एक हिस्सा है लेकिन मुख्य अंतर यह है कि यह पूर्व संस्कृतियों का अध्ययन है। यह अध्ययन अतीत में रहने वाले लोगों के दिन–प्रतिदिन जीवन के पुनर्निमाण पर आधारित है। यह संस्कृति के परिवर्तन के लिए स्पष्टीकरण चाहता है। इस शाखा में न केवल प्रागैतिहासिक शामिल है बल्कि यह प्रागैतिहासिक संस्कृति के निर्माताओं का भी अध्ययन करता हैं कभी–कभी इस भाग को अलग से पुरा–मानवविज्ञान के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ अतीत का मानवविज्ञान है। पांरपरिक रूप से प्रारंभिक मानव के जीवाश्म अवषेषों का अध्ययन इस शीर्षक के तहत किया जाता है।

मानव वर्गीकरण को रूप से एक जीव के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें खड़ी मुद्रा, विस्तारित और जटिल तंत्रिका तंत्र, हस्त–दक्षता, प्रखर दृष्टि, उच्चरित

वाणी और अन्य संबंधित जैविक विशेषता होती हैं। संस्कृति मानव का व्यवहार पहलू है। टायलर (1871) के अनुसार संस्कृति ''व्यवहार का एक मिश्रित सेट है, जिसमें आस्था, कला नैतिकता, कानून, रीति–रिवाज और कोई अन्य आदतें और क्षमताओं जो मानवों द्वारा समाज के एक सदस्य के रूप में प्राप्त की, शामिल हैं।'' क्रॉबर ने इसे मानवजाति के देहातीत व्यवहार के रूप में परिभाषित किया। संस्कृति मानव की एक अनूठी विषेषता है। संस्कृति की एक जैविक आधार मिला है। मानव–संस्कृति की रचना कर सकता है क्योंकि यह कुछ विशिष्ट जैविक विशेषताओं की प्राप्त करता हैं। संस्कृति, उपकरण बनाने और विचारों को प्रकट करने की क्षमता मानव जाति की अन्य जीवों से अलग पहचान देती है। सारांश में पुरातात्विक मानवविज्ञान अतीत का मानवविज्ञान है। जीवविज्ञान और संस्कृति दोनों पुरातात्विक मानवविज्ञान में समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। मानवविज्ञान की यह शाखा भी मानव का समग्र अध्ययन है लेकिन मुख्य अंतर समय आयाम का है।

अपनी प्रगति जांचे

1. ''पुरातात्विक मानवविज्ञान अतीत का मानवविज्ञान है'' कथन सत्य या असत्य है, स्पष्ट करें।

....

....

....

....

2.2 पुरातात्विक मानवविज्ञान

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में कई घटनाएँ जैसे कि सोसायटी एथ्नोलाजिक डी पेरिस का गठन, बाउचर डी पैर्टेस द्वारा पत्थर के औजारों की खोज, चार्ल्स लटील की भूगर्मीय परतों के सिद्धांतों की खोज, डार्विन की 'आरिजिन आफ स्पीसीज का प्रकाशन और इस तरह के अन्य घटनाओं ने ही मानवविज्ञान विषय के विकास की नींव रखी। विज्ञान के विभिन्न शाखाओं ने इस विषय के विकास में योगदान दिया। एम्बर के अनुसार एम्बर और पेरेग्रीन 2002 यह विषय अपने विकास के लिए कई अन्य विषयों का ऋृणी है लेकिन यह अपने स्वयं के अधिकार पर एक विशिष्ट और विशेष के रूप में बना हुआ है।

मानवविज्ञान के समान पुरातात्विक मानवविज्ञान का विषय क्षेत्र मानवों के आसपास केंद्रित कई व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जैसे कि जीवविज्ञान, संस्कृति, पर्यावरण और समय व स्थान। मानवविज्ञान की इस शाखा के उचित अध्ययन के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है।

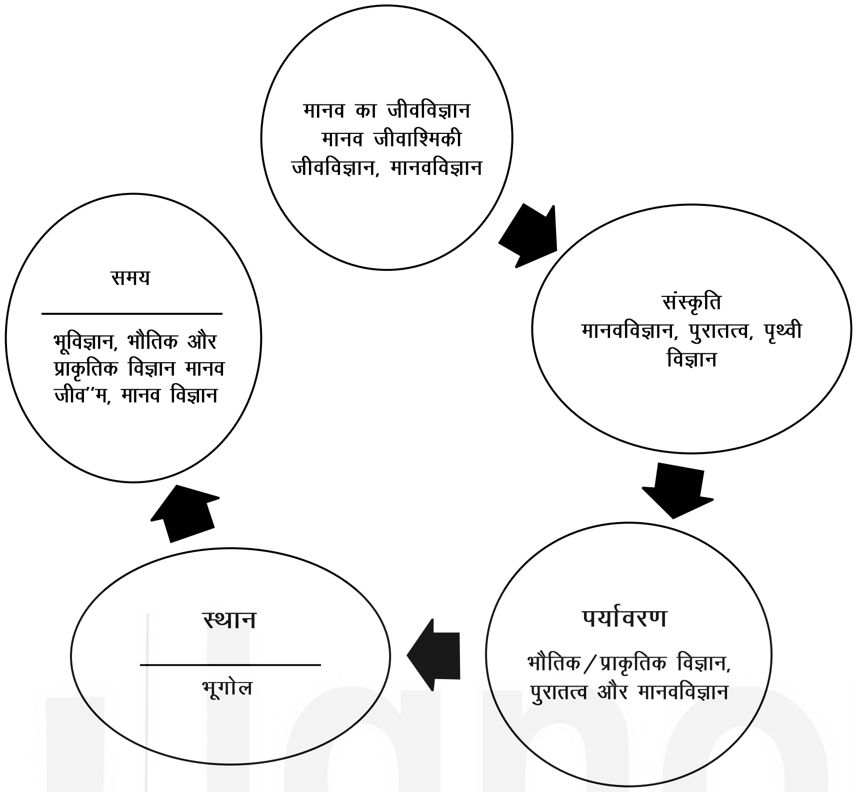

चित्र 1. अतीत के मानवविज्ञान के पुनर्निमाण के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रागैतिहासिक/पुरातात्विक मानवविज्ञान का कार्यक्षेत्र और अन्य विज्ञान के साथ संबंध।

2.3 पुरातात्विक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध

मानवविज्ञान को एक मूल विज्ञान के रूप माना जाता है, जिसने पहले से मौजूदा विज्ञान के विभिन्न विशेष विभागों की सहायता से आधार–सामग्री को एकत्र किया है। ये मानवों के अध्ययन के लिए जैविक रूप से, संस्कृतिक रूप से, समय और स्थान के माध्यम से पर्यावरण के संबंध में लागू होते हैं। मौजूदा विज्ञान में से कोई भी अकेले मानव की सम्पूर्ण कहानी प्रकट नहीं कर सकता है।

पुरातात्विक मानवविज्ञान में मानव और संस्कृति का पुनर्निमाण प्रारंम्भिक मानव के खुद के अंशों और उसके भौतिक अवशेष जो विभिन्न स्थानों पर पृथ्वी की सतह पर और सतह के नीचे बिखरी पाई जाती हैं। प्रारंभिक मानव के मानवविज्ञान के पुनर्निमाण की विधि को एक संयोजक के रूप में माना जाता है। यह कई विज्ञानों की मदद से किया जाता है।

इस प्रणाली–विज्ञान में बड़ी संख्या में विषय शामिल हैं, इसमें महत्वपूर्ण विषय इस प्रकार है; भूगोल, भूविज्ञान, पुरातत्व, इतिहास, वनस्पति विज्ञान, प्राणीशास्त्र, रसायन विज्ञान, भौतिकी, गणित और कई अन्य प्राकृतिक विज्ञान। मानवविज्ञान निश्चित तौर पर पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि यह मूल विषय है और इसने अपनी प्रविधि विकसित की है।

2.3.1 इतिहास

कोई भी विषय अपने उदभव और विकास के अध्ययन के लिए अपने उदभव के इतिहास का ऋणी होता है। उप–विषय की धीमी वृद्धि और विकास का कारण केवल उसके उत्पन्न होने के इतिहास से समझा जा सकता है (पेनिमल, 1965)। इतिहास

कहता है कि प्रागैतिहासिक/पुरातात्विक मानवविज्ञान डेढ़ सौ वर्षों से अधिक पुराना है। इतिहास विभिन्न शिल्प–उपकरण और जीवाश्म अवशेषों की खोज के स्वरूप, समय और अनुक्रम को भी बताता है। खोजों के इतिहास के आधार पर क्रमविकास का सिद्धांत, विकास, परिवर्तन और प्रसार–प्रक्रिया का अध्ययन कर के समझा जा सकता है। सांस्कृतिक इतिहास का पुनर्निमाण इस विषय से संबधित है। प्रायः पुरातात्विक आधार–सामग्री और ऐतिहासिक अभिलेख संयुक्त रूप से मानव और संस्कृति की पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करती हैं, जो दोनों में से कोई एक अलग से प्रस्तुत नहीं कर पाती।

2.3.2 पृथ्वी विज्ञान

पृथ्वी विज्ञान में भूगोल और भूविज्ञान दोनों सम्मिलित हैं। दोनों विषयों में सामान्य तत्व उपसर्ग *'जीओ'* है जिसका अर्थ पृथ्वी है। कई पहलुओं में भूविज्ञान और भूगोल सामान्य हैं क्योंकि दोनों पृथ्वी के अध्ययन से संबंधित हैं। परन्तु वे समानार्थी नहीं हैं। भूविज्ञान का समय से और भूगोल का स्थान से संबंद्ध है। पहला सतह के नीचे पृथ्वी का अध्ययन और दूसरा पृथ्वी की सतह का अध्ययन करता है। भूगर्भविदों के अध्ययन के तहत जो पृथ्वी एक समय निरावरण थी, लेकिन समय के साथ प्रकृति के तत्वों जैसे पानी, हवा और तापमान के कारण उपक्षरण और निक्षेपण गतिविधियों के कारण ये अन्य निक्षेपों के द्वारा ढांक ली गई या अन्य स्थानों पर हटा दी गई थी। जब भूविज्ञान और भूगोल दोनों एक साथ ले लिए जाते हैं तो वे ऐतिहासिक अध्ययन का विचार देते हैं। भूवैज्ञानिक पहलू मुख्य रूप से समय के लंबवत आयाम प्रस्तुत करता है और भौगोलिक विज्ञान स्थान की क्षैतिज अवधारणा प्रदान करता है। पुरातात्विक मानवविज्ञान में समय और स्थान की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है। पुरातात्विक मानवविज्ञान के साथ इन दो विज्ञानों के संबंधों पर चर्चा अलग से की गई है।

2.3.2.1 भूविज्ञान

भूविज्ञान कालक्रम प्रदान करता है। यह प्रश्न ''कब'' मानव और संस्कृति प्रारंभ और विकसित हुई का उत्तर देता है। भूविज्ञान के मुख्य घटक जो वर्तमान अध्ययन के लिए आवश्यक हैं, स्तर–विज्ञान, चट्टान रचना विज्ञान, जीवाश्मिकी और शैल–विज्ञान वर्णित भूविज्ञान की प्रत्येक शाखा का पुरातात्विक मानवविज्ञान के संबंध में समान महत्व है।

स्तर–विज्ञान

यह भूवैज्ञानिक सिद्धांत अध्यारोपण पर आधारित है। इसे पहली बार 1830 में चार्ल्स लटोल ने प्रस्तुत किया। सिद्धांत यह है कि पृथ्वी या स्तर की परतें एक दूसरे के शीर्ष पर अध्यारोपित होती हैं; जितना निचला परत उतनी प्रारम्भिक अवस्था। यह अबाधित निक्षेप के लिए सच है। इस तरह से पाया गया समय आयाम अपेक्षित है, मुख्य रूप से पूर्व या बाद के संदर्भ में और भूवैज्ञानिक परत के संदर्भ में, जिसमें एक शिल्प–उपकरण या जीवाश्म अवशेष पाए जाते हैं। पृथ्वी के गठन के बाद से सभी साक्ष्य भूगर्मीय स्तरीभूत वर्गों में संग्रहित हैं।

स्तरीभूत वर्गों की स्थिति खुदाई के माध्यम से या स्वाभाविक रूप से निरावरण सतह पर देखी जाती है, जैसे नदी तल, तंग घाटियों, खंड आदि के साथ–साथ चट्टान खंड। मानव की जैविक विशेषताऐं और इसकी संस्कृति को भूविज्ञान के कुछ मौलिक मुद्दों के आधार पर कई चरणों में विभाजित किया गया है। हम जब भी पुरातात्विक या सांस्कृतिक स्तर–विज्ञान की बात करते हैं, अंतर्निहित विचार भूविज्ञान से लिया जाता है। पुरातात्विक मानवविज्ञान में परिवर्तन

और विकास का अध्ययन समय आयाम के बिना व्यर्थ हैं। स्तर–विज्ञान समय आयाम प्रदान करता है, जो समय के माध्यम से जीव विज्ञान और संस्कृति की निरंतरता की प्रक्रिया की समझने में मदद करता है। समय की संकल्पना प्रसार–प्रक्रिया का निर्धारण करने के लिए एक आवश्यक कारक है।

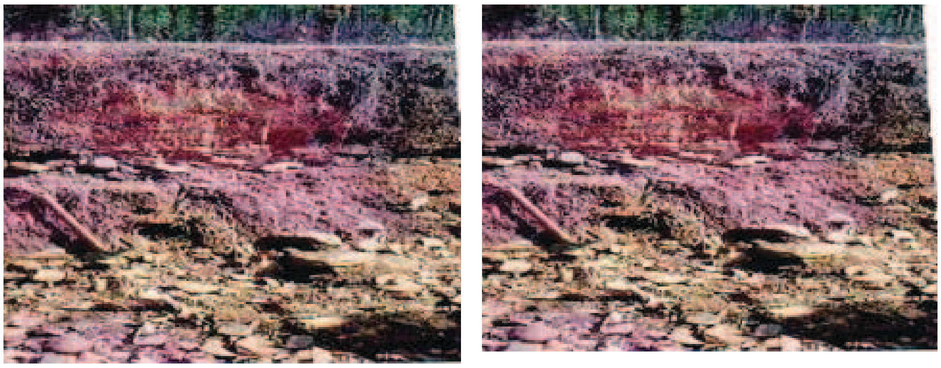

चित्र : 2 स्तरीभूत वर्गों की स्थिति का उदाहरण विभिन्न स्तर दिखा रहा है जिससे मानव अवशेष मिल सकते हैं।
स्रोतः प्रो. रंजना रे (लेखक) के निजी संग्रह

अपनी प्रगति जाँचें

2. स्तर–विज्ञान की परिभाषा बताइए।

....
....
....
....

चट्टान रचना विज्ञान (लिथोलॉजी)

भूविज्ञान की यह शाखा स्तर–विज्ञान से निकटता से जुड़ी है। यह प्रत्येक स्तर की संरचना के बारे में जानकारी देता है। उदाहरण एक स्तर का दिया जा सकता है जो ऐसी सामग्रियों से बना है जिसे केवल हिमानी परिस्थितिओं के तहत नीचे लाया जा सकता है और निक्षेप किया जा सकता है। यदि उस स्तर से कोई पुरातात्विक सामग्री पाई जाती है तो हम कह सकते है कि जो लोग उन्हें बनाते थे वे ठंडे जलवायु में रहते थे। चट्टान रचना विज्ञान के द्वारा मानवों और उनकी संस्कृति के बारे में कई और अनुमान लगाया जा सकते हैं, विषेष रूप से जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण के बारे में।

स्तर की गुणवता का अध्ययन तलछट के विश्लेषण के माध्यम से किया जाता हैं। इसमें तीन तत्व शामिल है। 1) परत के घटक 2) खाद–मिट्टी की मौजूद मात्रा और 3) परत के भौतिक गुण। इसमें विभिन्न विधियाँ शामिल है जो स्वयं अन्य विषयों से संबंधित है, जैसे मिट्टी विज्ञान, रसायन शास्त्र, सूक्ष्म जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणीशास्त्र इत्यादि। परत की संरचना न केवल उन सामग्रियों का संकेत देती हैं जिनसे परत बनी है, बल्कि इसमें परत के गठन से संबंधित मुद्दे भी शामिल हैं। परत की रचना और गठन को दिखाते और समझाते हुए, समकालीन पर्यावरण की समझ प्राप्त की जाती है। चट्टान रचना विज्ञान जलवायु में समय से हुए परिवर्तन बताती है। इस तरह मानव द्वारा विशिष्ट पर्यावरण और बदली हुई परिस्थिति के अंतर्गत पारिस्थितिकी और मानव द्वारा समायोजन की प्रक्रिया का पुनर्निमाण किया जाता है। यह दिए गए पर्यावरण पृष्ठभूमि में कार्यकारण के साथ संस्कृति के प्रतिमान, इसके उत्पत्ति और विकास के बारे में भी एक विचार देता है।।

जीवाश्म विज्ञान

यद्यपि यह दृष्टिकोण भूवैज्ञानिक विधि का एक हिस्सा है लेकिन इसे अलग से लिया जा सकता है। पुरातात्विक मानवविज्ञान के साथ जीवाश्मिकी का मुख्य संबंध तिथि–निर्धारण, अतीत के पर्यावरण का संभावित पुनर्निमाण और प्रारंमिक मानव के अवशेषों की प्राप्ति है। जीवाश्मिकी का मुख्य उद्देश्य जीवाश्मों का अध्ययन है। जीवाश्मीकरण जीवाश्मयुत वातावरण के तहत होता है। जीवत जीवों की हड्डियाँ जैव और अजैवी पदार्थों से बनी होती हैं। जैव पदार्थ हड्डीदार प्रोटीन है, जिसे अस्थिकि कहा जाता है। विभिन्न रचनाओं में अजैवी पदार्थ खनिज हैं। अस्थिकि की मिट्टी, जिसमें हड्डी दफनाई जाती है, में मौजूद सिलिका कणों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। प्रतिस्थापन अणु द्वारा होता है। इस प्रक्रिया में रूप पूरी तरह से संरक्षित रहता है, जबकि रासायनिक संरचना में परिवर्तन होता है। जीवाश्म पशुओं के विद्यमान रूप के बारे में आधार–सामग्री प्रदान करते हैं और यहां तक कि मानव के बारे में भी, यदि एक मानव जीवाश्म पाया जाता है। कपाल न केवल अपने आकार और रूप के बारे में जानकारी प्रदान करता है बल्कि अन्त–कपालियि ढाँचे और कपालीय क्षमता का अनुमान देता है। वर्तमान में डीएनए जीवाश्म हड्डियों से निकाला जा रहा है और क्रम–विकास और अन्य जैविक पहलुओं पर महत्वपूर्ण आधार–सामग्री बाहर आ रही है।

पुरातात्विक मानवविज्ञानी के लिए दो प्रकार के पशु जीवाश्म अवशेषों का महत्व है। वे निमानुसार हैंः 1) कुछ जीवाश्म अवशेष एक भूवैज्ञानिक काल से दूसरे तक सतत रहे हो और 2) कुछ जीवाश्म एक विशेष समय अवधि तक सीमित हों। पहले को एक विशेष समय अवधि के लिए सूचकांक जीवाश्म माना जाता है। जब मानव का कोई भी रूप जैविक या सांस्कृतिक या दोनों, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, उचित भूवैज्ञानिक (स्तरीभूत वर्गां में) संदर्भ में पाए जाते हैं, तो मानव अवशेषों को संबंधित जीवाश्मिकी सामग्री के संदर्भ में दिनांकित हो सकते है। उदाहरण विलाफ्रेच्चिअन पशुवर्गों का दिया सकता है, जो अत्यंत नूतन काल के लिए सूचकांक जीवाश्म हैं। जीवों के इस समूह में *इक्वस* (घोड़ा), *बोस* (मवेशी), *ऐलिफस* (हाथी) और *केमेलस* (ऊंट) के जीनस होते हैं। किसी भी भूगर्मीय स्तर से प्राप्त मानव अवशेष जीवों में से किसी एक के साथ पाया गया तो उसे अत्यंत नूतन काल का माना जाएगा।

समकालीन अवधि के पशु उस समय की सामान्यीकृत पर्यावरणीय स्थिति को इंगित करते हैं उसी पर्यावरण के आधार पर सांस्कृतिक पारिस्थितिकी का पुनर्निमाण किया जा सकता है। प्रारंम्भिक मानव की पारिस्थितिकीय जगह को भी समझा जा सकता है। उनावृत गैंडा और महाकुंजर की उपस्थिति बहुत ठंडा जलवायु इंगित करता है। बटजर (1964:143) ने वर्तमान में विभिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों में पाए गए पशुओं के जमाव का एक चार्ट दिया है। पशुओं की तुलना में पर्यावरण की बदली हुई परिस्थिति में खुद को समायोजित करने के लिए मानव के पास अधिक और बेहतर क्षमता होती है। इस तरह का समायोजन सांस्कृतिक नवाचारों के साथ किया जाता है, जैसे कि आग लगाना या लोग अथवा प्राकृतिक संसाधनों से ली गई और आकार दी गई सामग्री से शरीर को ढंकना। जीवाश्मिकी की मदद से मानव और पशु संबंध स्थापित किए जा सकते हैं।

मानवजीवाश्मिकी पुरा–मानवविज्ञान पुरातात्विक मानवविज्ञान का अनिवार्य अंग है। प्रारम्भिक मानव के जीवाश्म निष्कर्षों के साथ आधुनिक मानव की तुलनात्मक शरीर रचना के आधार पर क्रम–विकास के विभिन्न चरणों का पुनर्निमाण किया जाता है।

मानव जीवाश्म–वैज्ञानिक संस्कृति के विकास के साथ मानव विकास के पूरे इतिहास का पुनर्निमाण करते हैं।

शैल–विज्ञान

भूविज्ञान की यह शाखा शैल प्रकारों का अध्ययन करती है। मानव इतिहास का बड़ा हिस्सा पाषाण युग से संबंधित है। शैल प्रकारों ने पत्थर के उपकरणों के निर्माण में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। शैल वैज्ञानिक विभिन्न प्रकारों के चट्टानों के पतले खण्ड बनाते हैं और उन्हें पहचान करके विभिन्न श्रेणियों में रखते हैं। यह विश्लेषण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह चट्टानों की गुणवता पर आंकड़े उत्पन्न करता है और पत्थर के उपकरण उनकी विनिर्माण तकनीक और पत्थर के उपकरणों के निर्माताओं के कौशल और ज्ञान के बारे में एक सीख देता है। शैल वैज्ञानिक पत्थर के उपकरणों को बनाने के लिए शैल प्रकारों की उपयुक्तता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। एक पत्थरों के उपकरण निर्माता के लिए शैल बुरे या अच्छे हो सकते हैं। इस तरह के अध्ययन के माध्यम से यह पाया गया कि प्रारंम्भिक मानव उपकरणों के बनाने के लिए आदर्श शैल प्रकारों का चयन करने में सक्षम था। शैल प्रकारों का चयन निर्माण के प्रांसगिक तकनीक और इलाके में निश्चित रूप से उपलब्ध के साथ बहुत अधिक जुड़ा था। स्फटिक और कार्टजाइट को भारत और अफ्रीका में पूर्व पुरापाषाण उपकरणों जैसे कि हस्तकुठार बनाने के लिए पंसद किया जाता था, लेकिन तैयार मुख्य पत्थर तकनीक (लेवालोशियन) के विकास के साथ वे चर्टी, कार्टजाइट, चर्ट इत्यादि जैसे बारीक कण वाली कच्ची सामग्री पसंद करते थे। नवपाषाण काल के कठोर लकड़ी के कटाई के उपकरण जैसे कुल्हाड़ी और बसूला जो कठोर कण वाले शैलों पर बने होते हैं, उदाहरण के लिए, एपिडियोराइट, डियोराइट या परिवर्तित बेसाल्ट। उपकरण बनाने और उपकरणों के कार्यों की तकनीक नवपाषाण काल के दौरान कृषि के साथ बदल गई थी। इस कारण कच्चे माल में बदलाव जरूरी हो गया था। शैल विज्ञान संसाधन उपयोग, इसके समायोजन के साथ–साथ कच्चे माल और नए संसाधनों की खोज के लिए मानव की क्षमता के बारे में बताती है। अंततः शैल विज्ञान पत्थर उपकरण बनाने की तकनीक को समझने पर अधिक प्रकाश डालती है, जिसे न्यूनन प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है। पुरातात्विक मानवविज्ञानविदों के लिए शैल विज्ञान बहुत महत्वपूर्ण जो प्रयोगात्मक न्यूनन प्रौद्योगिकी पर काम कर रहे हैं।

अपनी प्रगति जांचें

3. न्यूनन प्रौद्योगिकी क्या है?

....

....

....

....

2.3.2.2 भूगोल

स्थान पर आधारित कोई भी अध्ययन भूगोल से संबंधित है। पुरातात्विक मानवविज्ञानविद मानव अवशेष के स्थल की खोज के साथ शुरू होते हैं, जो संभावित जैविक या सांस्कृतिक या दोनों हो सकते हैं। स्थल की स्थिति इसकी भौगोलिक स्थिति के संबंध में चिहिन्त है। स्थल को उसकी अक्षांशीय, अनुदैर्ध्य और उन्नताशं स्थितियों के संदर्भ में वर्णित किया जाता है। पर्यावरण, भूगोल का अनिवार्य अंग है। समकालीन भूगोल पूर्व पर्यावरण के लिए साक्ष्य मुहैया करता है।

भूगोल मानव–क्षेत्र संबंधों की इंगति करता है। भौगोलिक तत्व के आधार पर एक क्षेत्र को मानवीय निवास के लिए अनुकूल या प्रतिकूल माना जा सकता है। पुरातात्विक मानवविज्ञानविद मानव अधिकृत के लिए उपर्युक्त क्षेत्र के आधार पर मानव के अवशेषों की तलाश शुरू कर देते हैं। शुष्क क्षेत्र दोनों ठंड और गर्म रेगिस्तान मानव निवास के लिए अनुकूल नहीं है। प्रांरम्भिक मानव हिमालय के तलहटी के साथ–साथ रहना पसंद करते थे, लेकिन उच्च उंचाई पर नहीं, जो जगह स्थायी रूप से तुषाराच्छादित हो। इसी प्रकार से गंगा नदी के मैदानी क्षेत्र से अत्यंत नूतन काल के मानव अधिकरण के कोई भी साक्ष्य प्राप्त नहीं हुए है क्योंकि भौगोलिक साक्ष्य ये बताते हैं कि वह क्षेत्र अत्यंत नूतन काल के अंत तक कच्छ वनस्पति दलदल की स्थिति में था और मानव निवास के लिए उपर्युक्त नहीं था। भारत के पश्चिमी हिस्से के रेगिस्तान में बेहतर जलवायु की स्थिति थी और शुरूआती समय से पुरा मानव इस इलाके में रहते थे।

मानव–क्षेत्र संबंध भौगोलिक दृष्टि से अनुपयुक्त क्षेत्रों में आगे केंन्द्रित है। पर्यावरण के बदलाव की स्थिति के तीन पहलू हैं। वे हैं:– 1) प्रारंभिक मानव अनुकूलन को अपने तरीके को बदल सकता है, 2) यह कृत्रिम माध्यमों से पर्यावरण में परिवर्तन ला सकता है, जैसे कि शुष्क क्षेत्रों में नहरों की खुदाई करके पानी लाना या जानवरों की चराई या खेती के लिए जंगल को साफ करना, 3) अगर कुछ भी नहीं किया जा सकता है तो वे क्षेत्र को त्याग सकते हैं। उदाहरण सिंधु घाटी सभ्यता के कस्बों और नगरों का दिया जा सकता है, जिन्हें सरस्वती नदी को अपनी नाव्यता (नेविगेबेलिटी) खोने और इस क्षेत्र पर रेगिस्तान के अतिक्रमण के बाद छोड़ दिया गया था। (डेनिनो 2010) भू–आकृतिक सूचना काफी हद तक पुरातात्विक मानवविज्ञान में इस तरह की समझ से संबंधित है, खासकर यदि भौगोलिक जानकारी उस क्षेत्र के पुरा–भूगोल द्वारा पुष्टि दी जाती है।

क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र और संस्कृति के केन्द्रकीय और इसके फैलाव के क्षेत्र की अवधारणा भूगोल विषय से संबंधित है। सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में कोई भी काम उस केंद्र की पहचान करना चाहता है जहां से संस्कृति की धाराएं उत्पन्न हुई और फैल गई। संस्कृति केंद्र, कुछ क्षेत्रों को सम्मिलित करता है और आमतौर पर इसमें कुछ विशेष भौगोलिक तत्व होते हैं। केंद्र से परिधि तक संस्कृति का विस्तार संस्कृति के प्रसार के रूप में जाना जाता है और यह कई भौगोलिक कारकों पर निर्भर करता है। केंद्र से परिधि में कुछ भिन्नता पाई जाती है, जो भौगोलिक स्थिति के साथ बढ़ जाती है। महत्वपूर्ण और रोचक परिणाम संक्रमण क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ संस्कृति क्षेत्र एक दूसरे में विलय करते हैं।

2.3.3 पुरातत्व

पुरातत्वविद मानवविज्ञानविद वे हैं जो अतीत की संस्कृति के भौतिक अवशेषों का उत्खनन करते हैं। (डिटज, 1967) शुरूआत से पुरातत्व काफी हद तक अतीत और हाल के अतीत में मानव के भौतिक अवशेषों से संबंधित है। पुरातात्विक मानवविज्ञान बहुत ही शुरूआती समय, यानि लेखन की खोज से पहले, तक सीमित है। पुरातत्व भी अपने अध्ययन के लिए अन्य विषयों पर निर्भर है।

पुरातत्व, मानव द्वारा छोड़ी गई भौतिक वस्तुओं की खोज से संबंधित है। ये खोज दो प्रकार की हैं, अन्वेषण और उत्खनन। अन्वेषण सतह से आधार–सामग्री मुहैया करता है और उत्खनन सतह के नीचे से आधार –सामग्री बाहर लाता है। पुरातत्वविदों ने अन्वेषण और उत्खनन दोनों से सामग्रियों की प्रतिप्राप्ति के लिए विधियों और

तकनीकों का विकास किया है। सामग्रियों को पुनप्राप्त करने के बाद उन्हें स्थान, समय और रूप के संबंध में क्रम से रखा जाता है। (डिटज, 1967) चाइल्ड, (1956) ने अपनी पुस्तक ''पिसिंग टुगेदर द पास्ट'' में बताया है कि कैसे शुरूआत में एक शिल्प तथ्य का रेखांकन और वर्णन करके निष्कर्ष निकाला जा सकता है और फिर सभी संबंधित वस्तुओं के स्थान और समय के अनुसार उनकी सूची बनाई जा सकती है। इसे उन्होंने 'संग्रह' कहा। संग्रह से पुरातत्वविद संस्कृति का अनुमान लगाते हैं और अंततः सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की व्याख्या करते हैं।

2.3.4 भौतिक विज्ञान/प्राकृतिक विज्ञान

कई अन्य विज्ञान पुनर्निर्माण से निकटता से संबंधित हैं, मुख्य रूप से तिथि–निर्धारण के संबंध में। इस श्रेणी में रसायन शास्त्र, भौतिकी, खगोल विज्ञान, गणित, सांख्यिकी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान और कुछ अन्य विषय हैं।

तिथि–निर्धारण दो प्रकार के हैं; सापेक्ष और निरपेक्ष। पहले मानव अवशेष की तिथि पहले से दिनांकित घटना के संबंध से स्थापित करता है। बाद में कालमापन है जहां किसी वस्तु की तिथि कैलेंडर के पूर्ण संख्यात्मक क्रम में स्थापित की जाती है। पुरातात्विक मानवविज्ञान के साथ इन विज्ञानों के संबंधों का वर्णन नीचे दिया गया है।

भौतिकी और रसायन

रेडियोमैट्रिक तिथि–निर्धारण भौतिक और रासायनिक विज्ञान पर आधारित है। सबसे महत्वपूर्ण और सबसे ज्ञात रेडियो कार्बन विधि है जो रेडियोधर्मी कार्बन सी C^{14} पर किया जाता है। अन्य रेडियोमैट्रिक विधियां पीटेशियम आर्गन विधि, थीरियम यूरोनियम विधि, तापसंदीप्ति, लावाकांच जलयोजन, फिशन टैक, आर्कियो मैगनिटिज्म इत्यादि हैं।

फलोरिन परीक्षण, एमिनो एसिड रेसमाइजेशन नाइटोजन विश्लेषण पुरातात्विक मानवविज्ञान में रसायन शास्त्र के महत्व के कुछ उदाहरण हैं। इस के अलावा ये विषय विकारी वस्तुओं के संरक्षण के लिए तंत्र भी प्रदान करते हैं।

इलेक्ट्रानिक्स, पृथ्वी की सतह के नीचे वस्तुओं का पता लगाने के लिए साधन प्रदान कर रहें हैं। विद्युत चुम्बकीय अनुनाद की मदद से दफन हुई वस्तुओं जैसे धातु वस्तुओं, कब्रगाह, दिवारें, नीव, आवां, भटियां, चूल्हा और यहां तक कि गडढे और ऊपरी सतह की मिट्टी या कचरे से भरे मलबे का पता लगाया जा सकता है। उपग्रह छवियां न केवल सतह पर पुरातात्विक सरोकार की असामान्य विशेषताओं की पहचान करने में मदद करती है, बल्कि यह दफन हुई वस्तुओं को भी इंगित करती है। पुरातात्विक मानवविज्ञानविद के लिए सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिग) एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है।

जीव विज्ञान

वनस्पति विज्ञान और प्राणीशास्त्र महत्वपूर्ण विषय हैं। वनस्पति और जीव–जन्तु पर्यावरण के लिए मूल्यवान रचयिता हैं। जीव विज्ञान और संस्कृति दोनों के मानवी तत्व को समकालीन पर्यावरण की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। वास्तव में प्राणी–जगत में मानव की वर्गीकृत पहचान प्राणीशास्त्र के क्षेत्र में है। मानव जन्तु संबंधो की समझ मुख्य रूप से प्राणीशास्त्र पर निर्भर करती है। मानव प्राणी–जगत

का हिस्सा है, जन्तुओं के साथ उसका रिश्ता या तो सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। मानव एक मांसाहारी का शिकार हो सकता है या ये अन्य जन्तुओं का शिकार कर सकता है। कुछ जन्तु मानव जाति द्वारा अपने फायदे के लिए पालतू बनाये जाते हैं। प्राणिशास्त्री की मदद से मानव–जन्तु संबंध और इसके संस्कृतिक आशय को ठीक से समझा जा सकता है। पूर्व जीव–जन्तु अवशेषों को प्राणिशास्त्रियों द्वारा पहचाना जाता है। इस पर जीवाश्मिकी के संबंध में ऊपर चर्चा की गई है।

वनस्पति विज्ञान, पुरातात्विक मानवविज्ञान में भी एक प्रमुख भूमिका निभाता है। पराग विश्लेषण न केवल कालक्रम पर महत्वपूर्ण आंकड़े प्रदान करता है बल्कि यह क्षेत्र की वनस्पति पैटर्न पर भी प्रकाश डालता हैं। वनस्पति पैटर्न मानव गतिविधियों के लिए प्रासंगिक, पर्यावरण पृष्ठभूमि को इंगित करता है। उदाहरण, क्लार्क (क्लार्क, 1980) के यूरोप में मध्यपाषाण संस्कृति पर किए कार्य को दिया जा सकता है। उन्होंने यूरोप में अत्यंत नूतन काल के बाद की अवधि के दौरान मध्यपाषाण लोगों द्वारा पर्यावरण अनुकूलन की गतिशीलता को दिखाया था। इसे उन्होंने वनस्पतिविदों और भू–वैज्ञानिकों द्वारा जंगल के विकास और पश्चिमी यूरोप में पर्यावरण और भूगोल में परिवर्तन के संबंध में प्रदान किए गए आंकड़ों की मदद से किया था। उसने इस पर पुरातात्विक आंकड़ों की अध्यारोपित किया और उस समय यूरोप में रहने वाले मध्य पाषाण लोगों द्वारा पारिस्थितिकीय गठन को प्रमाणित किया था।

वृक्षवलय कालक्रम / वृक्षकालानुक्रमिकी तिथि निर्धारण का एक तरीका है जिसका प्रावधान वनस्पति–वैज्ञानिक करते हैं। वनस्पति विज्ञान भी मानव–वनस्पति संबंधों का विश्लेषण करने में मदद करता है। वनस्पति के संसाधनों का उपयोग मानव अपनी आजीविका के लिए करता है अर्थात आहार, तन्तु, औषधि, पात्र इत्यादि। मानव ने वनस्पति को न केवल अपने प्राकृतिक वास में इस्तेमाल किया बल्कि उन्हें पालतू बना दिया। ये मानव इतिहास का मोड़ हैं, वनस्पति विज्ञान की मदद से कृषि की उत्पत्ति और प्राणिपालन क्रियाविधि का अनुसंधान किया जा सकता है।

अंततः कई शंख–मीन, घोंघ, सूक्ष्म वनस्पति, जन्तु और वाइरस हैं, जो पर्यावरण में किसी भी प्रकार के बदलाव के प्रति संवेदनशील हैं। वे पर्यावरण और संस्कृति के तिथि–निर्धारण और पुनर्निमाण के लिए महत्वपूर्ण चिंहक हैं।

अपनी प्रगति जांचे

4. वृक्षकालानुक्रमिकी क्या है?

....

....

....

....

गणित और सांख्यिकी

दोनों विषय पुरातात्विक मानवविज्ञान से निकटता से संबंधित हैं। इसका उपयोग आंकड़ों के मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण और उचित व्याख्या के लिए किया जाता है।

खगोल–विज्ञान

इस बात के प्रमाण है कि शुरूआती समय से मानवजाति खगोल पिण्ड की भव्यता के प्रति आकर्षित होते थे। यह चट्टान कला, मृदभांड के उभार आदि पर दिखाई देता है। खगोल विज्ञान का सब से बड़ा योगदान *ऋग्वेद* की तिथि–निर्धारण में मिलता है जो सिंधु घाटी सभ्यता की शीर्ष अवस्था के साथ मेल खाता है। यह नक्षत्र प्लाइअडीज अथवा *कृतिका नक्षत्र* (तिलक 1893) आधार पर किया गया था। खगोल विज्ञान ने प्रागैतिहासिक काल में पंचाग तैयार करने में भी मदद की।

ये पुरातात्विक मानवविज्ञान के अन्य विषयों के साथ कुछ महत्वपूर्ण संबंध हैं। अन्य और भी विज्ञान हैं जो पुरातात्विक मानवविज्ञान के बीच में योगदान देते हैं।

2.3.5 मानवविज्ञान

मानवविज्ञान और इसकी शाखा पुरातात्विक मानवविज्ञान के बीच मुख्य संबंध मानव के माध्यम से है। मानवविज्ञान और पुरातात्विक मानवविज्ञान दोनों के लिए केंद्र बिंदु मानवजाति है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है मानवविज्ञान और पुरातात्विक मानवविज्ञान का क्षेत्र समान है। जीवाश्म मानवों की पहचान मानव जीवाश्मिकी और जैविक मानवविज्ञान द्वारा की जाती हैं। जैविक मानवविज्ञान मानव विकास के विभिन्न चरणों का विवरण देता है। होमों या होमिनिड जीनस के कम से कम तीन चार चरण हैं। इन चरणों को जीवाश्म वैज्ञानिकों द्वारा प्रदान किये गए आंकड़ों और प्राकृतिक विज्ञान की सहायता के आधार पर अनुमानित तिथियों में स्थापित किया जाता है।

सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान, जीवविज्ञान और संस्कृति के बीच संबंध स्थापित करने में मदद करता है। प्रारंभिक मानव की सामाजिक अभिव्यक्ति को मानवविज्ञान विश्लेषण विधि द्वारा पुनर्निर्मित किया जाता है। संस्कृति के लिए उतरदायी कारण और कारक, संस्कृति के लिए जैविक आधार मानव मानवविज्ञान अध्ययन का हिस्सा है। पर्यावरण के समायोजन की प्रक्रिया, कोई परिवर्तन या परिवर्तन के कारण का सामान्य मानवविज्ञान पद्धति की सहायता से अनुमानित किया जाता है।

यद्यपि भाषा मानवविज्ञान के लिए पुरातात्विक मानवविज्ञान से कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है लेकिन उच्चरित बोली के विकास के लिए जिम्मेदार जैविक कारक सांस्कृतिक साक्ष्यों से प्राप्त किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, गलेन क्षेत्र में कंठनली, तालु आदि का विकास, मस्तिष्क में ब्रोका क्षेत्र के साथ समन्वित रूप से भाषा के लिए मानव की क्षमता को दर्शाता है। इसके अतरिक्त उपकरण प्रकारों के मानक और समान प्रतिरूप, शिल्प तथ्य निर्माण की समान प्रक्रियाओं, उपकरणों के निर्माण के लिए समान कच्चे माल का उपयोग संचार के लिए किसी प्रकार के भाषाई साधन की उपस्थिति को इंगित करता हैं।

आधुनिक और जीवाश्मीय मानव दोनों के, माइटोकॉन्ड्रियल अध्ययन के क्षेत्र में जैविक मानवविज्ञान का हालिया योगदान मानवो की उत्पत्ति और व्यवस्थित ढंग से दुनिया भर में उनके फैलाव को इंगित करता है। इस अध्ययन को दुनिया की शुरूआती संस्कृतियों पर अध्यारोपित किया गया था और अफ्रीका में अपने उदगम से शुरूआती प्रसार और दुनिया में बसने की स्पष्ट तस्वीर उभरी थी।

जातीय–पुरातत्व (एथनो–आर्कियोलॉजी) पुरातात्विक मानवविज्ञान की एक विशेष तकनीक है। मानवजातिवर्णन आंकड़ों की मदद से सांस्कृतिक पुनर्निमाण किया जा

सकता हैं। यह विधि मानवविज्ञान पर बहुत निर्भर है। मानवजातिवर्णन (इथेनोग्रॉफिक) आंकड़ें निर्धारित मानवविज्ञान पद्धतियों द्वारा एकत्र किए जाते हैं। अतीत सामग्रियों पर वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक अर्थ का अध्यारोपण अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए क्योंकि सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व प्रक्रियाएं हैं, जो गतिशील हैं अर्थात जो विभिन्न कारणों से लगातार बदल रही हैं। जीवन के अतीत तरीकों के पुनर्निमाण के लिए मानवजातिवर्णन आंकड़ों का उपयोग मानवविज्ञान विशेषज्ञता पर निर्भर करता है।यह कहा जा सकता है कि जब अध्ययन का फोकस मनुष्य होता है, तो मानवविज्ञान को एक बड़ी भूमिका निभानी होती है। मानवविज्ञान, मानव और संस्कृति के आधार पर तथ्यों को संश्लेषित करता है और मनुष्य के जीवन के पिछले रास्ते को फिर से संगठित करने में मदद करता है। साथ ही यह पिछले दो लाख वर्षों में हुई जैव रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से हमें वर्तमान दिनों तक की स्थिति के जैविक और सांस्कृतिक रूप से परिचय कराता है।

2.4 सारांश

पुरातात्विक मानवविज्ञान अतीत में रहने वालों लोगों के दिन–प्रतिदिन जीवन का अध्ययन करते हैं। वे प्रारंभिक मानव के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरूप, मान्यताओं और रीति–रिवाजों का पुनर्निमाण करते हैं और साथ ही साथ वे जैविक रचना, जीवविज्ञान और संस्कृति के बीच संबंधों का अध्ययन करते हैं। मानवविज्ञान की उत्पत्ति और विकास कई अन्य विषयों अर्थात जीवविज्ञान, पृथ्वी विज्ञान, इतिहास, भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान के योगदान के साथ हुआ था। इस प्रकार पुरातात्विक मानवविज्ञान भी उन सभी विषयों से उसी तरह संबंधित है। पुरातात्विक मानवविज्ञान का दायरा मानव के समग्र अध्ययन के उदेश्य से मानवविज्ञान के समान ही है,जिसका मुख्य अंतर समय कारक है। पुरातात्विक मानवविज्ञान अतीत के मानव और संस्कृति से संबंधित है। इस कार्य क्षेत्र को मानव का जीवविज्ञान, सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व, पर्यावरण जिसमें वे रहते थे, पृथ्वी पर स्थान, जिससे पर्यावरण में विविधता की वृद्धि हुई, जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान पर संस्कृति में परिवर्तन हुआ, में विभाजित किया जा सकता है। पुरातात्विक मानवविज्ञान के कार्य–क्षेत्र में समय एक महत्वपूर्ण भाग है। मानवविज्ञान की इस शाखा का अध्ययनन कई विषयों से संबंधित है। पुरातात्विक मानवविज्ञान का मूल प्रसंग पुनर्निमाण है। मानव अवशेषों के खण्डित साक्ष्य, जैविक और संस्कृति दोनों पुनर्निमाण के लिए उपलब्ध हैं। कई अन्य विषय जैसे की इतिहास, पृथ्वी विज्ञान भूविज्ञान और भूगोल, पुरातत्व और भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान समय के माध्यम से मानव और उसकी संस्कृति के पुनर्निमाण में योगदान दे रहे हैं। मानवविज्ञान अपनी शाखाओं, जैविक, सामाजिक–सांस्कृतिक और यहां तक कि भाषामानवविज्ञान के साथ प्रारंभिक मानव और उसकी संस्कृति के अध्ययन के लिए संबंधित हैं।

कोई भी विषय अपने आप में मानव से संबंधित सभी सवालों के उतर नहीं दे सकता है। प्रत्येक विषय अध्ययन के लिए एक तरफ या अन्य से योगदान देता है। प्रारंभिक मानव की जैविकी को प्राणिशास्त्र संबंधी वर्गीकरण के माध्यम से समझा जाता हैं। होमों और होमिनिड के विभिन्न चरणों की पहचान जैविक मानवविज्ञान और मानव जीवाश्मिकी की सहायता से की जाती है। अतीत पर्यावरण के बारे में ज्ञान, मानव जैविकी और संस्कृति के माध्यम से मानव के अनुकूलन के तरीके के पुनर्निमाण का एक महत्वपूर्ण भाग है। पृथ्वी विज्ञान जैसे कि भूविज्ञान और भूगोल विज्ञान भी उतना महत्वपूर्ण हैं। भूगोल के योगदान के बिना पर्यावरण की अवस्था, जगह के परिवर्तन

को समझा नहीं जा सका होता। विकास, उत्पत्ति और प्रसार प्रक्रिया के अध्ययन में भी समय की एक महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इस संबंध में मुख्य महत्व भू–विज्ञान, भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान का है। इस ज्ञान में योगदान देने वाले अन्य विषय पुरातत्व, इतिहास और मानवविज्ञान हैं। संक्षेप में यह कहा सकता है कि पुरातात्विक मानवविज्ञान कई विषयों के अध्ययन से संबंधित हैं लेकिन बाध्यकारी कारक मानवविज्ञान हैं। मानवविज्ञान अन्य विषयों के माध्यम से उपलब्ध आंकड़ों को संश्लेषित करता है और पुरातात्विक मानवविज्ञान को अंतिम लक्ष्य तक पहुंचता है। प्रारंभिक मानव की जैविकी, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन समय और स्थान के माध्यम से करता है।

2.5 संदर्भ

बटजर, के. डब्ल्यू. (1964). *इन्वायरन्मेंट एंड आर्कियोलॉजी* (पृष्ठ 425). शिकागो: एल्डिन.

चाइल्ड, वी. जी. (1956). *पीसिंग टूगेदर द पॉस्ट, ऑफ द इन्टर्प्रिटेशनआर्कियोलॉजिकल डेटा.*लंदन: स्टलेज वेगन पॉल.

क्लार्क, जी. (1980). *मेसोलिथिक प्रेल्यूड: द पेलिओलिथक– नियोलिथिक ट्रैनजिशन इन ओल्ड वर्ल्ड प्रीहिस्ट्री.* इंग्लैड: इडेनबर्ग यूनीवर्सिटी प्रेस.

डेनियो, एम. (2010). *द लोस्ट रिवर: आन द ट्रेल आव द सरस्वती.* पेगुइन बुक्स इंडिया.

डिटज, जे. (1967). *इन्विटेशन टू आर्कियोलॉजीः विद इलस्ट्रेशन बाई एरिक,* जी. एंगस्टीर्म, न्यूयार्कः डबलडे.

पेरेग्रीन, पी. एन. एम्बर, सी. आर. और एम्बर, एम. (2002). *फिजिकल एंथ्रोपोलॉजीः ओरिजनल रीडिंज इन मेथड एंड प्रैक्टिस.* प्रेंटिस हाल.

क्रॉबर, ए. एल. (1952) *द नेचर आव कल्चर.* दिल्लीः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रेस.

लब्बॉक, जे. (1865). प्रीहिस्टोरिक टाइम्स एज इलुस्ट्रेटेड बाई एंसेंट रिमेन्स एंड द मैनर्स एंड कस्टम ऑफ मार्डन सेवेज. इडिनबर्गः विलिएम्स एंड नार्गेट.

लयल, सी. (1830). *प्रिन्सिपल्स ऑफ जीआलॉजी, बीइंग ऐन अटम्ट टू इक्सप्लेन द फार्मर चेंन्जस ऑफ द अर्थ सर्फेस* , बाई रेफ्रेन्स टू कॉजजे नाउ इन ऑपरेशनः वॉल्यूम I- लंदनः जे. मुर्रे.

पेनिमान, टी. के. (1965). *ए हॅन्ड्रड इयर ऑफ ऐन्थ्रोपोलॉजी. लंदन :* जी. डकवर्थ.

तिलक, बी. जी. (1893). *द ओरियन ऑर, रीसर्चेज इंटू द ऐंटिक्विटी ऑफ द वेदाज.* बांबे : राधाबाई आत्माराम सागोन बुकसेलर एंड पब्लिशर.

टायलर, ई. बी. (1871). *प्रिमिटिव कल्चरः रीसर्चेस इंटू द डिवेलप्पेंट ऑफ माइथालॉजी, फिलासफी, रिलिजन, आर्ट, एंड कस्टम* (वॉल्यूम 2) लंदनः जे. मुर्रे

2.6 आपकी प्रगति की जांच करने के लिए उतर

1. हां, पुरातात्विक मानवविज्ञान अतीत का मानवविज्ञान है।

2. स्तर–विज्ञान अध्यारोपण के भूवैज्ञानिक नियम पर आधारित है। स्तर–विज्ञान के सिद्वांत में कहा गया है कि शीर्ष पर परत नूतन परत है, जबकि बाद की नीचे की सबसे प्रारंभिक काल की है, बशर्ते भूकंप, विवर्तनिक क्रिया, भूस्खलन इत्यादि से परतों में कोई विध्न न हो।

3. शैल–विज्ञान चट्टानों का अध्ययन है और पुरातात्विक मानवविज्ञान में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। चट्टानों का अध्ययन पत्थर उपकरण बनाने की तकनीक को समझने पर बहुत अधिक प्रकाश डालता है, जिसे न्यूनन प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है।

4. वृक्षकालानुक्रमिकी तिथि–निर्धारण का एक तरीका है जिसका वनस्पति द्वारा व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ*

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 पुरातात्विक स्थल

3.1.1 स्थलों के प्रकार

3.2 अध्ययन की पद्धतियाँ

3.3 अन्वेषण

3.3.1 अन्वेषण के उद्देश्य और लक्ष्य

3.3.2 अन्वेषण के लिए क्षेत्र चयन

3.3.3 व्यापक अन्वेषण

3.3.4 गहन अन्वेषण

3.3.4.1 ग्रिड प्रणाली (ग्रिड सिस्टम)

3.3.4.2 सामग्रियों का संकलन

3.3.5 विश्लेषण, परिणाम और व्याख्या

3.4 उत्खनन

3.4.1 उत्खनन के प्रकार

3.4.1.1 परीक्षण–गर्त या परीक्षण खाई

3.4.1.2 बड़े क्षेत्रों का उत्खनन

3.4.2 उत्खनन की अन्य पद्धतियाँ

3.4.3 उत्खनन की मूल पद्धति

3.4.4 उत्खनन के लिए आवश्यक उपकरण

3.5 संरक्षण और परिरक्षण

3.5.1 पुरातात्विक वस्तुओं की देखभाल और प्रबन्धन

3.6 सारांश

3.7 संदर्भ

3.8 आपकी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर

***योगदानकर्ता**– 1. प्रो.रंजना रे, सेवानिवृत्त, मानवविज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता
2. डॉ.पी. वेंकटरमन, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

अधिगम के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगेः

- पुरातात्विक स्थलों के बारे में समझनें में;
- प्रागैतिहासिक पुरातत्व में अध्ययन के पद्धतियों की स्पष्ट करने में;
- यह जानने में कि अन्वेषण द्वारा आंकड़े कैसे एकत्र किए जाते हैं;
- प्रागैतिहासिक पुरातत्व में उत्खनन के महत्व पर चर्चा करने में; तथा
- पुरातत्व में संरक्षण और परिरक्षण के महत्व की व्याख्या करने में।

3.0 परिचय

आपने पहले से ही सीखा है कि पुरातात्विक मानवविज्ञान का अर्थ क्या है। इस इकाई में हम मानव निर्मित शिल्पकृतियों का अध्ययन करने के लिए प्रागैतिहासिक पुरातत्वविद/पुरातात्विक मानवविज्ञानविद द्वारा उपयोग की जाने वाली पद्धतियाँ पर चर्चा करेंगे जो पृथ्वी की परतों मे गहरे दफन हैं। प्रसिद्ध पुरातत्वविद गॉर्डन चाइल्ड ने इस विषय को मानव क्रिया के कारण भौतिक संसार में सभी परिवर्तनों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है (चाइल्ड, 1956)। प्रारंभिक मानव के भौतिक अवशेष शिल्पकृतियों के रूप में पास जाते है। शिल्पकृतियों की मानव द्वारा निर्मित और अनिर्मित चीजों के रूप में परिभाषित किया गया है। इनमें चल वस्तुऐं जैसे की उपकरण, हथियार, व्यक्तिगत गहने इत्यादि और अचल वस्तुऐं जैसे की घर, मंदिर, महल, नहरें इत्यादि शामिल हैं। पुरातात्विक मानवविज्ञानविदों का पहला कार्य इन शिल्पकृतियों को वर्गीकृत करना है वर्गीकरण की पद्धति को वर्गीकरण के रूप मे जाना जाता है।

वर्गीकरण पुरातत्व में आधारीय पद्धति है। इसमें जांच–परिणामों का विवरण और वर्गीकरण शामिल है। आमतौर पर पुरातत्वविद संस्कृति के घटकों, इकाइयों में गठित जिन्हें प्ररूप के रूप में जाना जाता है, से संबंध रखती हैं। अतीत की सामग्री का अध्ययन करने की सुविधा के लिए वर्गीकर्ता द्वारा प्रकारों को स्वेच्छित ढंग से परिकल्पित किया जाता हैं। प्ररूप वे वस्तु हैं जो रूप और काम में एक–दूसरे के समान होते हैं। उदाहरण, हस्तकुठार, विदारणी, खुरचनी, चाकू इत्यादि के दिए जा सकते हैं। प्रत्येक प्ररूप के समान विशेषताऐं हैं दूसरे शब्दों में प्ररूप के वर्गीकरण और निर्धारण के लिए दो मूलभूत पद्धतियाँ है। पहला, प्ररूपों का वर्गीकरण पूरी तरह से उनकी उपयोगिता के आधार पर किया जाता है; दूसरा यह निश्चयपूर्वक कहा जाता है कि प्रकार प्रागैतिहासिक मानवों के कुछ व्यवहार संबंधी लक्षणों से संबंधित हैं। प्रारूपों को समाज द्वारा विनियमित व्यवहार से संबंधित मानक माना जाता है। शिल्पकृतियां और उनके प्रकारों की उपस्थिति पर विचार समय और स्थान की पृष्ठभूमि के संदर्भ किया जाता है, तथा क्रमशः सामयिक और स्थानिक इकाइयों के रूप में वर्णित किया जाता है।

पुरातात्विक मानवविज्ञान के अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों को सीखने से पहले, पुरातत्व स्थल के बारे में एक संक्षिप्त विवरण और कैसे पुरातात्विक स्थल बनता है, की नीचे चर्चा की गई है।

3.1 पुरातात्विक स्थल

पुरातात्विक स्थल एक ऐसी जगह है जिसमें अतीत के मानव गतिविधि का प्रमाण संरक्षित है। स्थलों की विभिन्नता सतह के उपर प्रत्यक्ष या कई अवशेष से लेकर

के भवनों और अभी भी इस्तेमाल में लाई जा रही इमारतों तक है। एक स्थल कुछ सेंटीमीटर जितना छोटा हो सकता है या एक बर्तन या एक नगर जितना विशाल, जैसे हड़प्पा या मोहनजोदड़ो के स्थल जो कुछ किलोमीटर तक फैले हुए है। इसके अलावा अध्ययन के काल और पुरातत्वविद के सैद्धांतिक दृष्टिकोण के आधार पर ''स्थल'' की परिभाषा और भौगोलिक क्षेत्र व्यापक रूप से भिन्न हो सकते हैं। स्थल या तो प्राथमिक हो सकतें है, यदि लोगों ने अपने स्वयं के अवशेष वहां निक्षिप्त किए हैं या द्वितीयक, यदि अवशेष अन्य लोगों या प्राकृतिक क्रिया द्वारा निक्षिप्त किया गया है। स्थल के किसी अन्य मानव गड़बडी के परिणामस्वरूप स्थल के तत्वों की आसपास खिसकाया जा सकता है और फिर से पुननिक्षिप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक नदी सोपान पर प्राथमिक निक्षेप को बुलडोजर के द्वारा नदी–सोपन के दूसरे भाग में खिसकाना पुनर्निक्षेपण का स्थान द्वितीयक स्थल है।

3.1.1 स्थलों के प्रकार

(i) **पुरातात्विक संदर्भ द्वाराः** शिल्प–तथ्य/लक्षण या शिल्पकृतियाँ जहां पाए जाते हैं कि आधार पर एक स्थल सतह अवस्थति स्थान हो सकता है, यदि सतह पर पाए जाते हैं, या स्तरित अवस्थति स्थान, यदि परतों में या स्तरों में पाए जाते हैं।

(ii) **कलाकृति सामग्रियों द्वारा** : शिल्पकृतियों के प्रकार या किस्म भी एक स्थल की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। यदि पाषण युग के उपकरण या लौह युग के उपकरण पाए जाते हैं, तो स्थल को पाषाण युग स्थल या लौह युग स्थल के रूप में उल्लेखित किया जा सकता है।

(iii) **भौगोलिक अवस्थति द्वाराः** यदि शिल्पकृतियों या अतीत मानव गतिविधि गुफा के अन्दर पाए जाते हैं, तो स्थल एक गुफा स्थल है। इसी प्रकार घाटी या दर्रा या नदी–सोपान पर अवस्थति स्थलें हो सकती हैं।

(iv) **स्थल कार्य से संबंधित शिल्प–तथ्य द्वाराः** किसी स्थल पर पाए गए शिल्पकृतियों के किस्म और उसके अन्तर्वस्तु के आधार पर, किसी स्थल को एक वध–स्थल या एक वास स्थान स्थल के रूप में बयान करना कभी कभी संभव होता है।

अपनी प्रगति जांचें

1. उन तरीकों का उल्लेख करें जिनके द्वारा पुरातात्विक स्थलों की पहचान की जा सकती है।

....

....

....

कार्यक्षमता के आधार पर निम्न स्थलें (साइट) शामिल हो सकते हैं :

(I) *आवास या वास स्थान स्थलों,* जहां लोग रहते थे और कई गतिविधियों को अंजाम देते थे। यह आमतौर पर चूल्हे, अन्न के अवशेष या शिल्प–तथ्य अवशेष, जो विशेषताओं या सरंचनाओं की उपस्थिति से चिन्हित होता है।

(II) *वध स्थल*, जहां प्रागैतिहासिक लोग ज्यादातर भोजन के लिए पशुवध या पशुओं का वध करते थे। इसका अनुमान पशुओं की हड्डियों के बड़े ढेर के साथ साथ कुछ प्रक्षेप्य हथियार जैसे बाणाग्र या भालाग्र से लगाया जा सकता है।

(III) *अनुष्ठानिक स्थल*, जहां कुछ अनुष्ठान या समारोह हो सकते थे। इसका अनुमान पाए गए अनूठे अनुष्ठान वस्तुओं या शिल्पकृतियों, विशेषताओं या संरचनाओं के प्रतिरूप से लगाया जा सकता हैं।

(IV) *शवाधान स्थल*, जहां प्रागैतिहासिक शवाधान हुआ था और अब कब्रिस्तान और पृथक कब्रों के रूप में बरामद किए गए हैं। कुछ स्थानों पर जहां द्वितीय शवाधान होते थे, बड़े कलश या पत्थर की बनी कब्र, शवाधान के अवशेषों के सबूत के साथ पाए जाते हैं।

(V) *व्यापार, खदान और कला स्थलें*, विशेष गतिविधि स्थलें हैं। उन क्षेत्रों में जहां व्यापारिक गतिविधियां हुई, प्रमुख शहरों के पास उनके अनुकूल स्थान के साथ–साथ आकर्षक व्यापार वस्तुओं की बड़ी मात्रा देखी जाती है। दूसरी ओर खदान स्थलें खदानों के पास स्थित हैं तथा कच्चा माल जैसे, तांबा, चकमक इत्यादि के उत्खनन के लिए आवश्यक विशेष उपकरणों के सबूत के साथ पाए जाते हैं, कला स्थल, ऐसी स्थल हैं जहां अतीत कला गतिविधियों का प्रमाण अभी भी देखा जाता है जैसे कि स्पेन में अल्टामिरा की सुंदर गुफा और फ्रांस में लेस की साइट्स।

3.2 अध्ययन की पद्धतियाँ

प्रारंभिक मानव और उसकी संस्कृति का वैज्ञानिक पुनर्निर्माण प्रागैतिहासिक पुरातत्व के अध्ययन का प्रमुख हिस्सा है। प्रागैतिहासिक पुरातत्व के अध्ययन के लिए कई महत्वपूर्ण पद्धतियां हैं। अध्ययन के लिए पहला कदम मानव और संस्कृति पर तथ्यों का संग्रह है। यह अन्वेषण और उत्खनन के माध्यम से किया जाता है। द्वितीय चरण एकत्रित सामग्री और तथ्य के समय आयाम को तय करना है। प्रागैतिहासिक संस्कृति ने समय के साथ प्रगति की और विकसित हुई है। परिवर्तन, विकास और उद्भव को समझने के लिए समय–मापक्रम की पृष्ठभूमि में संस्कृति का अनुक्रमिक क्रम आवश्यक है।

अपनी प्रगति की जांच करें

2. पुरातत्व के अध्ययन के दो अलग–अलग पद्धतियाँ क्या हैं?

....

....

....

3.3 अन्वेषण

प्रागैतिहासिक पुरातत्व के लिए साक्ष्य ज्यादातर मामलों में स्थलों पर फैले हुए होते हैं। व्यवस्थित स्थल सर्वेक्षण अन्वेषण के साथ शुरू होता है। पूर्ववर्ती समय में मानव गतिविधियों वाले स्थलों की खोज प्रागैतिहासिक पुरातत्व का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। ऐसे स्थानों की प्रागैतिहासिक स्थलों के रूप में जाना जाता है। प्रागैतिहासिक स्थलों की तलाश को अन्वेषण या स्थल सर्वेक्षण के रूप में जाना जाता है। स्थलों के प्रकार अलग–अलग होते हैं। स्थल एक ऐसी जगह हो सकती है जहां लोग डेरा डालते थे/रहते थे या सिर्फ खाद्य और अन्य सामग्रियों या तैयार उपकरणों

को प्राप्त करने के लिए आए थे, अपने मृतकों को दफनाते थे या एक चट्टान की सतह हो सकती है जिस पर प्रागैतिहासिक मानव चित्र अंकित, चित्रित या उत्कीर्ण इत्यादि करते थे। एक दिए गए क्षेत्र की प्रागैतिहासिक पुरातत्व की समझ के लिए वैज्ञानिक तरीके से एक व्यवस्थित सर्वेक्षण किया जाता है। प्रागैतिहासिक मानव के अवशेषों की खोज के लिए इस तरह के सर्वेक्षण को अन्वेषण के रूप में जाना जाता है। अन्वेषण संबंधित प्रागैतिहासिक सामग्री के महत्व का अध्ययन करने के लिए सतह सर्वेक्षण है। अन्वेषण स्थल की महत्व की इंगित करता है और भविष्य में उत्खनन के लिए आगामी आवश्यकता निर्धारित करता है।

3.3.1 अन्वेषण के उद्देश्य और लक्ष्य

शिल्पकृतियों और संबंधित सामग्रियों के संग्रह के साथ अन्वेषण शुरू होता है। अन्वेषण का उद्देश्य आगे निम्नलिखित के लिए हो सकता है : (क) नाशरक्षण पुरातत्व के हिस्से के रूप में स्थल का पता लगाने के लिए, (ख) स्थलों का पता लगाना और पहले से सूत्रबद्ध की गई विशिष्ट समस्यों से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए। अन्वेषण के लक्ष्य स्वरूप में चयनात्मक हो सकते हैं या यह पक्षपाती भी हो सकते हैं। नैदानिक उपकरण, बर्तन के टुकड़े या अन्य शिल्पकृतियों को उठाने से स्थल की सतह पर मौजूद स्थानिक प्रतिरूप को नष्ट कर सकता हैं। प्रागैतिहासिक पुरातत्वविद को सभी प्रकार के साक्ष्य के लिए अपनी आखें खुली रखनी चाहिए। साक्ष्य का संग्रह वैज्ञानिक होना चाहिए क्योंकि इस तरह के साक्ष्यों के आधार पर प्रागैतिहासिक काल के जीवन के तौर–तरीके का तर्कसंगत पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

3.3.2 अन्वेषण के लिए क्षेत्र चयन

वास्तविक सर्वेक्षण कार्य शुरू करने से पहले जिस क्षेत्र का अन्वेषण करना है, उसके बारे में कुछ विकल्प और समझ बनाई जानी चाहिए। सबसे पहले अन्वेषक के पास क्षेत्र की पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी होनी चाहिए। मानव अधिग्रहण और गतिविधि की संभावना के लिए भू–आकृति विज्ञान, जल निकास प्रतिरूप, भूमि समोच्च, भू–आकृति, वनस्पति प्रतिरूप, मिट्टी आदि बहुत महत्वपूर्ण कारक हैं। स्थलाकृतिक परतों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। स्थलाकृतिक परतें क्षेत्र के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करती हैं। आकाशीय (सेटलाइट) तस्वीरों का अध्ययन किया जा सकता है क्योंकि ये अक्सर भूमि की सतह की असामान्य विशेषताओं को इंगित करते हैं, जो प्राकृतिक नहीं बल्कि मानव निर्मित हो सकते हैं। प्रकाशित कृति क्षेत्र में पूर्व कार्य के बारे में जानकारी प्रदान करती है जो क्षेत्र में प्रागैतिहासिक कार्य के विषय–क्षेत्र को इंगित करती है। अन्वेषण का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा क्षेत्र की सतह का पैदल चलते हुए सावधानीपूर्वक (पैमाइश) आवीक्षण करना है। इसलिए हम कह सकते है कि क्षेत्र चयन के लिए दो बातें महत्वपूर्ण हैं, सबसे पहला, पूर्व कार्यो का महत्व, दूसरा आवीक्षण द्वारा वास्तविक सर्वेक्षण। अन्वेषण को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, व्यापक और गहन। पहला प्रांरभिक है और दूसरा विस्तारपूर्वक है। हालांकि दोनों प्रकार के अन्वेषण एक–दूसरे के पूरक हैं। एक क्षेत्र के अन्वेषण को पूरा करने के लिए और क्षेत्र की प्रागैतिहासिक संस्कृति की पूर्ण समझ बनाने के लिए, दोनों व्यापक और गहन पद्धतियों का अनुसरण एक साथ किया जाना चाहिए।

3.3.3 व्यापक अन्वेषण

जैसे कि नाम से पता चलता है, इसमें क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण शामिल है। अन्वेषक उतना ही क्षेत्र सम्मिलित करता है जितना जरूरत है। व्यापक अन्वेषण के उद्देश्य निम्नानुसार है :

(क) क्षेत्र की सामान्य पृष्ठभूमि उसके विन्यास और किसी भी पुरातात्विक रूप से महत्वपूर्ण साक्ष्य की मौजूदगी जानना। ये मानव गतिविधि के प्रमाण, जैसे उपकरण, शिल्पकृतियां, वास–स्थान भूमिखंड, दीवारें, गड्ढें, सड़कें, कब्रगाह आदि हो सकते हैं।

(ख) एकत्रित साक्ष्य विभिन्न भूगर्भीय स्तर से संबधित होने चाहिए, ताकि शिल्पकृतियों को प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सके और संस्कृति के विभिन्न चरणों में क्रम में रखा जा सके।

(ग) शिल्प–तथ्य प्रकारों को इसके अतिरिक्त क्षेत्र के मौजूदा सांस्कृतिक क्रम प्रणाली से संबंधित किया जा सकता है।

(घ) पर्यावरण की स्थिति, अतीत और वर्तमान दोनों की व्यापक अन्वेषण से समझा जा सकता है। क्षेत्र के स्वाभाविक रूप से अनावृत स्तरीकरण और भू–आकृति प्रतिरूप के अध्ययन से पर्यावरण पुनर्निमाण किया जा सकता हैं इस तरह के साक्ष्य के आधार पर पारिस्थितिक पुनर्निमाण किया जा सकता है।

(ङ) व्यापक अन्वेषण क्षेत्र की पूर्व संस्कृति को क्षेत्र के वर्तमान सांस्कृतिक तत्व से संबंधित करता है। यह विशेष रूप से प्रागैतिहासिक पुरातत्व के जातिगत पुनर्निर्माण में मदद करता है (ग्रीन, 2003)

3.3.4 गहन अन्वेषण

विशिष्ट उद्देश्यों गहन अन्वेषण की पद्धति का मार्गदर्शन करते हैं। अन्वेषण के माध्यम से एकत्रित तथ्य कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित किए जाने चाहिए और स्थान में इसकी सीमा का पता लगाया जाना चाहिए। पुरातत्वविद भौगोलिक संदर्भ और एकत्रित तथ्यों के वितरण की भौगोलिक सीमा की खोज करता हैं। इस तरह सांस्कृतिक तत्वों के लिए स्थान और समय का पुनर्निर्माण किया जाना है।

अपनी प्रगति जांचें

3. अन्वेषण और उत्खनन क्या हैं?

....

....

....

3.3.4.1 ग्रिड प्रणाली (ग्रिड सिस्टम)

यह अन्वेषण की गहन पद्धति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह प्रणाली स्थल के भीतर पाए गए शिल्पकृतियों और लक्षणों की अविस्थति के मानचित्रण और अभिलेखिन में सहायक होती है। जालक रेखा–चित्र के लिए एक नियम बिन्दु चुना जाता है। इस बिन्दु को आधार बिन्दु के रूप में जाना जाता है। इस बिन्दु से जालक उत्पन्न होता है। स्थल मध्यानविृक (मेरिडियन) नाम वाली एक रेखा उत्तर–दक्षिण दिशा में इस बिन्दु से खींची जाती है। एक और रेखा आधार बिन्दु से पूर्ण समकोण पर मध्याद्ध तक खींची जाती है। इस रेखा को आधार रेखा या स्थल की पूर्व पश्चिमी रेखा कहा जाता है। कई प्रकार के ग्रिड बनाए जा सकते हैं। मूल जालक प्रणाली परिमित या सीमित जालक (चित्र 1) है। यह छोटे आकार के स्थल के लिए बनाया जाता है, जैसे घर दायरा, शिल्पकृतियों के निर्माण के लिए निर्माणशाला, एकल कब्रगाह आदि। जालक की रचना शंकु चालन द्वारा की जाती है। खूंटीयों को मजबूत डोरी से खिंचाव के साथ जोड़ा जाता है। एक तरफ से आधार रेखा और

दूसरी तरफ से मध्याह को लेते हुए क्षेत्र को छोटे वर्ग इकाइयों में बांटा जाता है। इकाईयों का आकार शोधकर्ता के चयन के अनुसार भिन्न हो सकता है। प्रत्येक वर्ग इकाई को मध्याह और आधार रेखा के माध्यम से अनुक्रमिक क्रम से चिहिंत और क्रमांकित किया जाता है। यह प्रणाली स्थल की उचित तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इस तरह प्रारंमिक मानकों द्वारा क्षेत्र में किए गए गतिविधियों का सार्थक पुनर्निर्माण किया जा सकता है। पाषाण युग कार्य स्थल पर बहुत छोड़े गए कचरे अपशिष्ट के ढेर और निर्मित और अधूरे दोनों उपकरण होने की उम्मीद होती है। एक वध स्थल पर भाग्यवश उपकरण, किनारों पर उपयोग के निशान के साथ शिकार की हड्डियां भी मिल सकती हैं। पूर्वी अफ्रीका में ओल्डुवाई गार्ज के पास ऐसे स्थल पाए गयें हैं।

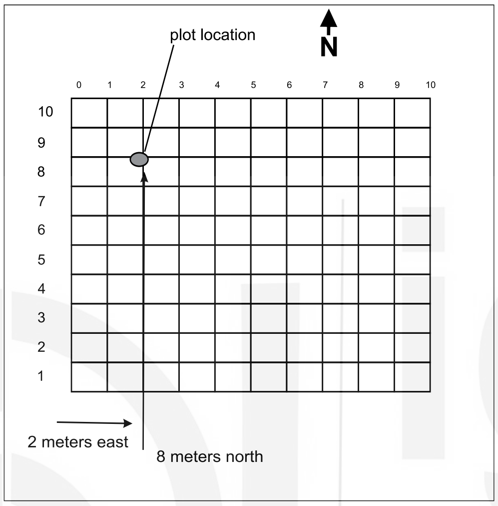

चित्र 1 : ग्रिड प्रणाली

3.3.4.2 सामग्री का संग्रह

साक्ष्य संग्रह के लिए अन्वेषण किया जाता है। ध्यान में रखना चाहिए कि क्षेत्र से तथ्य का संग्रह भी एक प्रकार से स्थल से साक्ष्य का विनाश है। इस कारण से संग्रह वैज्ञानिक रूप से होना चाहिए और ग्रिड में इसकी उपस्थिति का सावधानीपूर्वक अभिलेखिन होना चाहिए। पहले जो कुछ पुरातात्विक की कल्पना को आकर्षित करता था को संगृहीत करते थे। इस तरह का संग्रह न केवल तथ्यों का दुरूपयोग करता है बल्कि अपूर्ण जानकारी देता है। सम्पूर्ण उपकरणों के साथ अपशिष्ट सामग्री भी महत्वपूर्ण हैं। उपकरण बनाने की तकनीक प्रयुक्त या अपशिष्ट सामग्री पर निर्भर करती है। अन्य अपशिष्ट सामग्री, टूटी हुई और त्याग की गई वस्तुएं अतीत के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की अपनी कहानी कहती है। इसलिए हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अन्वेषण में सामग्रियों का संग्रह तार्किक और वैज्ञानिक होना चाहिए, न की काल्पनिक।

3.3.5 विश्लेषण, परिणाम और व्याख्या

सभी एकतित्र तथ्यों को सूची में ठीक प्रकार से दर्ज किया जाना चाहिए। शिल्पकृतियों को चिहिंत और सूचीबद्ध किया जाना चाहिए। एकत्रित शिल्पकृतियों की संरक्षित रखने के लिए पर्याप्त उपाय होना चाहिए। अंत में पुरा वैज्ञानिक द्वारा निर्धारित उद्देश्य के अनुसार व्याख्या और विश्लेषण किया जाना चाहिए।

भारत में प्रागैतिहासिक स्थलों पर प्रमुख कार्य अन्वेषण विधि द्वारा किया जाता है। यहां कई उदाहरण दिए गए है। ब्रूस फूट, एक भूविज्ञानी को भारत में प्रागैतिहासिक

अध्ययन के जनक के रूप में माना जाता है। उन्होंने चेन्नई के पास स्थित पल्लावारम नामक स्थल से 1863 में पहले हस्तकुठार की खोज की थी। उन्होंने क्षेत्र में खोज की और पहली बार भारत में पुरापाषाण संस्कृति की उपस्थिति को स्थापित किया (पाडाया, 2014)। इसके बाद कई और स्थलों के सर्वेक्षण हुए। कुछ उल्लेखनीय यहां दिए गए हैं। येल और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के संयुक्त अभियान को 1936 में आयोजित किया गया था। इस अभियान ने अविभाजित भारतीय उपमहाद्वीप के चयनित क्षेत्रों में खोज की, कश्मीर घाटी, पंजाब पठार, नर्मदा नदी घाटी से शुरू करके पूर्व मद्रास राज्य के कोसथलैयार नदी घाटी तक। डी टेरा, पैटरसन और अन्य (डी टेरा और पैटरसन, 1939) ने कश्मीर घाटी में पिरपंजाल पर्वतमाला के आसपास खोज कर के अत्यंत नूतन हिमानी अनुक्रम का पुनर्निर्माण किया। उन्होंने पंजाब क्षेत्र विशेष रूप से पोतवार पठार (अब पाकिस्तान में) में खोज की और इस क्षेत्र में अत्यंत नूतन जलवायु अनुक्रम और कालक्रम का पता लगाया। सोहन नदी, सिंधु की एक छोटी सहायक नदी, घाटी से एक संस्कृति जो *सोहन संस्कृति* के नाम से प्रसिद्ध पाई। इस खोज में व्यापक और गहन दोनों तरीके से खोज की गई। उन्होंने संस्कृति को उन उपकरणों के आधार पर फिर से संगठित किया जो उन्हें भूवैज्ञानिक स्तर और प्राकृतिक रूप से निर्धारण योग्य घटनाओं की प्रकृति के अनुसार प्राप्त हुए थे। बाद में भारत में कई प्रसिद्ध प्रागैतिहाविद द्वारा अन्वेषण किए गए। नर्मदा घाटी में डी टेरा और पैटरसन ने नर्मदा नदीघाटी में खोज की और इस क्षेत्र के सांस्कृतिक अनुक्रम का पुनर्निर्माण किया। उन्होंने यह भी दिखाया की इस क्षेत्र में संस्कृति वृष्ट्यावर्तन परिस्थिति में विकसित हुई हैं। वृष्ट्रयावर्तन एक जलवायु स्थिति थी, जिसने शुष्क और नम स्थितियों को वैकल्पिक रूप से अनुभव किया था। ये कम औसत वार्षिक वर्षा की आगामी अवधि की तुलना में अधिक औसत वार्षिक वर्षा की अवधि थीं। उन्होंने आगे कौसथलैयार नदी घाटी में खोज की, जहां ब्रूस फूट ने पुरापाषाण उपकरणों की खोज की थी। इसके परिणामस्वरूप हमें भारत में पुरापाषण संस्कृति का विवरण मिलता है (सांकलिया, 1977)। बाद में कई दिग्गजों ने भारत के विभिन्न कोनों में प्रागैतिहासिक स्थलों की खोज की और अब हमारे पास वर्तमान में हमारे देश में मौजूद अतीत संस्कृति का पूरा विवरण है। (पाड्या,2014)

3.4 उत्खनन

अन्वेषण के विपरीत उत्खनन में सतह के नीचे की सामग्री को खोद के निकाल कर के उसका अध्ययन करना शामिल है। उत्खनन के लिए एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए, अन्यथा यह व्यर्थ होगा। उत्खनन पृथ्वी की सतह को बुलडोजर से नहीं खोदना है बल्कि इसे बारीकी से और सावधानीपूर्वक एक विशिष्ट उद्देश्य से किया जाना चाहिए। उत्खनन स्थल सांस्कृतिक अनुक्रम की खोज के लिए और मिट्टी की सतह के नीचे स्थित सांस्कृतिक स्तरों के विवरण और अभिलिखित के लिए किया जाता है। खुदाई के दो प्रकार हैं, एक खड़ी और दूसरा समतल। खड़ी खुदाई एक दूसरे पर पड़ी सांस्कृतिक स्तरों को निर्धारित करता है। इसके लिए स्तरीभूत वर्ग की स्थिति पर सावधानीपूर्वक नियंत्रण बनाए रखा जाना चाहिए। समतल खुदाई एक ही स्तर पर पाए गए प्रत्येक सांस्कृतिक सामग्री के बीच प्रत्यक्ष संबंध रखती है।

वास्तविक खुदाई शुरू करने से पहले उत्खनन क्षेत्र का नक्शा तैयार करना चाहिए और खुदाई के स्थल की तस्वीर लेनी चाहिए। पहला काम ग्रिड बनाना है। ग्रिड बनाने का विकल्प खुदाई के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यह उत्खनन के पास उपलब्ध समय, धन और अन्य संसाधनों पर भी निर्भर करता है। नीचे दी गई आकृति (चित्र 2) उत्खनन की खाईयों का खाका दिखाता है। ग्रिड को खूंटी से चिहिंत किया जाता है और वर्ग इकाइयों को डोरी से फैलाकर सीमांकित किया जाता है। खाई के एक

कोने पर बेलचा, बाल्टी और छाननी जैसे कुछ उपकरण देखे जा सकते हैं। छाननी के पास कचरे का ढेर भी स्थित है।

3.4.1 उत्खनन के प्रकार

पहला प्रश्न जो किसी के मन में आता है कि खुदाई कहां की जाए? उत्खनन के दो प्रकार हैं; एक यादच्छिक नमूना चयन (रैंडम) और दूसरा स्थल का पूरी तरह से उत्खनन करना। पहली विधि परीक्षण–गर्त या परीक्षण–खाई के रूप में जाना जाता है।

3.4.1.1 परीक्षण–गर्त या परीक्षण–खाई

इसे *सॉन्डेज* के रूप में भी जाना जाता है, जिसका मतलब ध्वनि गर्त है। ये वो खाइयां हैं जो नीचे क्या है का पता लगाने के लिए खोदी जाती हैं। यह एक प्रकार का यादच्छिक नमूना चयन है। खाई के आकार के बारे में कोई दृढ़ नियम नहीं हैं। व्यापक उत्खनन करने से पहले परीक्षण खुदाई की जाती है। परीक्षण–खाई खोदने के लिए जगह का चयन कंप्यूटर या सर्वेक्षण या अंतर्ज्ञान या यादच्छिक (रैंडम) या तार्किक तर्क के माध्यम से किया जाता है। परीक्षण–गर्त खड़ी तरफ के साथ में खोदा जा सकता है या यह एक आयातकार खाई हो सकती है। परीक्षण उत्खनन स्थल पर सांस्कृतिक अवशेषों की संरचना और अवस्थिति पर तथ्य प्रदान करता है। यह गतिविधि के क्षेत्रों विशेष रूप से इसके भीतर प्रचुर निक्षेप का पता लगाता है। परीक्षण–खाइयां स्तर विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण हैं (हैरिस, 1969)। यह स्थल के लंबी और खड़ी रूपरेखा प्रदान करता है। पद्धति कर्म के अनुसार लम्ब रूप से खुदाई सांस्कृतिक रूप से बंजर स्तर पहुंचने तक की जाती है। व्हीलर (1956) ने लिखा कि पुद्दुचेरी में अरिकरमेदू में, उन्हें खुदाई के तल तक पहुंचने के लिए सुमद्रतल से 11 फीट नीचे परीक्षण खाई खोदनी पड़ी थी। मोहनजोदड़ों में वह जल स्तर से 10 फीट नीचे गए और स्तर तक पहुंचने के लिए उन्हें जल पंप का उपयोग करना पड़ा। परीक्षण गर्त न केवल सांस्कृतिक स्तरों की पूरी जानकारी रखतें हैं बल्कि यह भी गलत जगह खुदाई करके अनावश्यक पैसे की बर्बादी को भी रोकते हैं। कभी–कभी एक टीले के शीर्ष से उसके तल तक सीढ़ी खाइयां खोदी जाती हैं जहां यह बंजर मिटटी में कटाव करती हैं। इस प्रकार की खाई प्रारंभिक सामग्री को उत्तरकालीन सामग्री से अंतर करने के लिए बनाया जाता है। उत्तरकालीन सामग्री सबसे नीचे की परत पर पाए जाते हैं। स्थल में हर एक जगह पर स्तरों के नमूनों के तौर पर परीक्षण खाइंया खोदी जाती हैं (चित्र 3)।

चित्र 2 : खड़ी उत्खनन
(मानव विकास संग्रहालय, बर्गोस, स्पेन में रंजना रे के द्वारा ली गई तस्वीर)

3.4.1.2 बड़े क्षेत्रों का उत्खनन

एक बार लंबरूप परिकल्पना को मंजूरी दे दी जाती है और ऊर्ध्वाधर अनुक्रमण का पता लगाया जाता है तब खाइयों का पार्श्विय विस्तार किया जा सकता है। बड़े क्षेत्र की खुदाई का उद्देश्य स्थल पर विभिन्न गतिविधियों का खुलासा करना है। यदि एक आबादी–स्थल की खुदाई हो, तो उत्खननकर्ता जितने संभव हो उतने आवास स्तर को प्रकाश में लाने की कोशिश करेगा और अतीत में हुई सभी प्रकार की गतिविधियों का खुलासा करना चाहेगा। बड़े क्षेत्रों के उत्खनन के लिए भी कोई ढूढ़ने का नियम नहीं है। यह उत्खननकर्ता द्वारा निर्धारित उद्देश्य और उत्खनन के स्थल के प्रकार पर निर्भर करता है।

चित्र 3 : बड़े क्षेत्र का उत्खनन

(रंजना रे द्वारा हनोई, वियतनाम में ली गई तस्वीर)

3.4.2 उत्खनन की अन्य पद्धतियाँ

उत्खनन के कई अन्य तरीके हैं। ये है (i) खाई खोदना (ii) पट्टी विधि, (iii) (क्वाडेंट्र) चौथाई–पद्धति (iv) क्षेत्र या खंड उत्खनन और (v) स्ट्रिपिंग।

(i) *खाई खोदना :* स्थल का अनुप्रस्थ काट उपलब्ध करने के लिए लंबे संकीर्ण आयताकार खाइयों को खोदा जा सकता है। यह स्थल के स्तरीभूत वर्गो की स्थिति को समझने के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह लंबी खड़ी रूपरेखा प्रस्तुत करती है। संकीर्ण खाई खुदाई का प्रयोग नमूना चयन के लिए किया जाता है। यह तकनीक घरों, कब्रिस्तान और गतिविधि क्षेत्रों की खोज के लिए उपयोगी है।

(ii) *पट्टी विधि :* इस विधि का प्रयोग टीले या समाधि स्तूपों की खुदाई के लिए किया जाता है। उत्खनन क्षेत्र के किनारे से उत्खनन शुरू होती है और खुदाई पट्टीयों में स्थल के केंद्र की तरफ बढ़ती रहती है। केंन्द्र की दिशा में 5 फीट चौड़े कटाव करते हुए टीले की जांच की जाती है।

(iii) *क्वाडेंट पद्धति :* टीले को चार भागों मे विभाजित किया जाता है और बीच में तीन या चार फीट चौड़े खुले हिस्से रखे जाते हैं।

(iv) *क्षेत्र या खंड उत्खनन :* यह स्थल के एक बड़े क्षेत्र की व्यवस्थित और क्रमबद्ध खुदाई है। इसका उद्देश्य, शिल्पकृतियों , विशेषताओं, गतिविधि क्षेत्रों आदि का विस्तृत नमूना प्राप्त करना है। इस प्रकार का उत्खनन आमतौर पर ग्रिड प्रणाली के अंतर्गत किया जाता है। ग्रिड के हर चकौर खंड के बीच दो फीट चौड़ा

खुला हिस्सा काम के अंत तक संरक्षित रखा जाता है। इस तरह का उत्खनन लम्बरूप या समतल या दोनों उत्खनन हो सकते हैं। एक उत्खननकर्ता हमेशा ग्रिड प्रणाली का पालन नहीं कर सकता हैं लेकिन एक संपूर्ण विशेषता जो महत्वपूर्ण हो सकती है को प्रकाश में ला सकता है।

(v) *उत्खननः* इस प्रकार के उत्खनन में सतह से सतह सामग्री को पूरी तरह से हटाना शामिल है, ताकि नीचे स्थिर भूमि सतह अनावृत को सके। निरावृत करने से जीविका कार्यशाला, घरों आदि के लक्षण अनावृत हो सकते हैं। बिनफोर्ड (1972) इस उत्खनन को तीसरा चरण मानते थे; पहला मानते थे परीक्षण–गर्त को दूसरा क्षेत्र–उत्खनन को। निरावृत करना मंहगा हो सकता है क्योंकि इसे भारी मशीनरी की आवश्यकता होती हैं (हेस्टर और अन्य, 1975)।

हालांकि, कुछ विशेष स्थलों के लिए जैसे की गुफाओं, चटटान शरण स्थल, चटटानों पर चित्र, जलग्रस्त स्थल, पानी के नीचे स्थल, कब्रें, पत्थर की संरचना, लकड़ी की संरचना और अन्य निर्माण सामग्री के लिए उत्खनन के कुछ विशेष विधियां हैं। (ग्रीन, 2003)

3.4.3 उत्खनन की मूल पद्धति

व्हीलर (1956) और कई अन्य विद्वानों का विचार है कि एक उत्खननकर्ता को अलग क्षेत्रों में उत्खनन स्थल के अनुसार अलग–अलग विधियों का पालन करना चाहिए। यूरोप में पुरापाषाण स्थलों के लिए बुलडोजर का उपयोग किया जाता है (होल और हीजर, 1965)। उत्खनन ज्यादातर मामलों में स्थिति के प्रति उत्सुक अवलोकन और अनुकूलन के साथ अतिसावधान और सर्तक प्रक्रिया है। सतह और स्थल के अधिभार को सावधानीपूर्वक खुरच के साफ किया जाता है। उत्खनन के बारे में सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि यह साक्ष्य के विनाश की प्रक्रिया है। स्थल, इसके जांच–परिणाम और संबंधित विशेषताएं क्षेत्र की संस्कृति की व्याख्या और पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है।

दो प्रकार की बुनियादी विधियां हैं। एक बेलचा, द्वारा क्षेत्र की पतली परतों में निकालना और इस प्रकार स्थल को समतल रूप से अनावृत करना। दूसरा जमीन में एक खड़ी तरफ के सहारे खाइयाँ खोदना है (हील और हीजर, 1969)। पुरातत्वविद खुदाई की आवश्यकता के अनुसार दोनों विधियों का पालन करते हैं। समतल उत्खनन, स्थल की वायवीय परिप्रेक्ष्य को प्रत्यक्ष करती है और लम्बरूप उत्खनन स्थल के समय आयाम को जानने के लिए आवश्यक है।

खाई का लेआउट महत्वपूर्ण हैं, खाइयों को वर्ग–खंडों में विभाजित किया जाना चाहिए और खूंटी और डोरी से ढंग से चिहिंत किया जाना चाहिए (चित्र 4)। डोरी, खाई की वास्तविक सीमा को चिहिंत करने के लिए दिखाती है। प्रत्येक खाई के बीच में कम से कम तीन फीट चौड़ा खुला स्थान छोड़ा जाना चाहिए। स्तरीकृत वर्गों की स्थिति के अभिलेखिन के लिए एक 'विशेष नियंत्रण' खाई (व्हीलर, 1956)

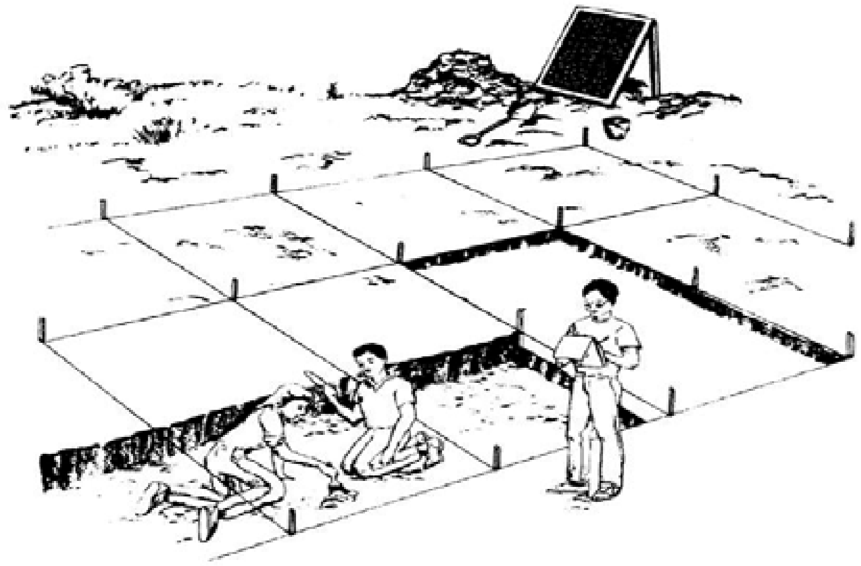

चित्र 4: उत्खनन

स्रोत : एक पुरातात्विक स्थल की खुदाई। (वार्ड, एच. ट्रैविक, और आर. पी. स्टीफन डेविस जूनियर. 1999. **टाइम बिफोर हिस्ट्री द** ***आर्कियोलॉजी ऑफ नार्थ कैरोलिना चैपेल हिल*** : नार्थ कैरोलिना विश्वविद्यालय प्रैस.)

उत्खनन के लिए एक निर्देश बिंदु होना चाहिए, जिसे भौतिक वस्तुओं और संरचनाओं की अवस्थिति को मापने के लिए आधार बिंदु के रूप में जाना जाता है। यह उत्खनन–कर्ता द्वारा चुना जाता है यदि कोई निश्चित बिंदु उपलब्ध नहीं है तो उत्खनन–कर्ता को आधार बिंदु निश्चित करने के लिए संरचना बनानी चाहिए। उत्खनन के दौरान इसे कायम रखा जाना चाहिए। आधार बिंदु से दूरी को आधार रेखा के माध्यम से मापा जाना चाहिए। आधार रेखा को बिंदुओं से जोड़ करके, जो आधार बिंदु से स्पर्शरेखा पर रखी गई हैं। जब उत्खनन प्रगति पर हो तो प्रत्येक एकल खोज के माप को नोट करना और अभिलखित करना चाहिए। ये देशान्तरीय बाहरी और नीचे की ओर के माप होंगे। विन्यास के साथ–साथ स्तर का खोजों से संबंधित विवरण रखना चाहिए। निकाली हुई मिट्टी खाई से दूर एक जगह पर रखी जानी चाहिए। निकाली हुई मिट्टी के ढेर को नियंत्रित रखना चाहिए अन्यथा महत्वपूर्ण साक्ष्य इसमें खो सकते हैं।

खोज की गई सभी वस्तुओं को उनकी संरचना, अनुभाग और महत्वपूर्ण वस्तुओं के साथ उनके संबंध के अनुसार संदर्भित किया जाना चाहिए। खोजों की क्रमवाचक संख्या, खंड नामपत्र, स्तर और रेखाचित्र के साथ नोटबुक में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्तर पर वस्तुओं को सावधानीपूर्वक प्रतिचित्रण, उन्हें खाई में स्थिति के अनुसार अभिलिखित करना और वस्तुओं की फोटोग्राफी करना उत्खनन के महत्वपूर्ण भाग हैं। वस्तुओं का सरंक्षण महत्वपूर्ण है। कई भंगुर वस्तुओं और विकारी सामग्री पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत होती है।

सांस्कृतिक सामग्रियों के अतिरिक्त कुछ गैर शिल्पकृतियाँ भी हो सकती हैं जिन्हें एकत्र किया जा सकता है, जैसे पराग नमूना, काठकोयला, पशु हड्डियाँ, पौधों के अवशेष आदि। उनके पास भी अपनी कहानी बताने के लिए होगी। वे समकालीन पर्यावरण के तिथि–निर्धारण और पुनर्निर्माण में भी मदद कर सकते हैं।

अंत में इस तरह के अभिलेखन के आधार पर संस्कृति का पुनर्निर्माण स्थल पर लोगों द्वारा विभिन्न गतिविधियों की व्याख्या के साथ किया जाएगा।

3.4.4 उत्खनन के लिए आवश्यक उपकरण

एक सही और वैज्ञानिक उत्खनन के लिए उचित और पर्याप्त उपकरण आवश्यक है। कुछ उपकरणों के नाम नीचे दिए गये हैं।

फावडाः प्रत्येक कार्यकर्त्ता को नोक वाले या गोल सिरे के लंबे हैंडल वाले फावड़े मुहैया कराने चाहिए।

कुदालीः मजबूत हैंडल के साथ इसका सिरा भारी और नोक वाला होना चाहिए कुदाली की आवश्यकता खासतौर पर कठोर, ठोस और पथरीली मिट्टी को बेधने के लिए होती है। कठोर मिट्टी के अलावा कहीं कुदाली का प्रयोग नहीं किया जाता क्योंकि यह शिल्पकृतियों को नुकसान पहुंचता है।

मिट्टी को छानने के लिए बड़ी छलनीः आमतौर पर आधा और एक चौथाई इंच वाली बड़ी चलनी का उपयोग किया जाता है। महीन जाल वाली छलनी लघु वस्तुओं जैसे लघु उपकरण, दांत, मनके आदि को ढूंढने के लिए पंसद की जाती है। कभी–कभी पानी छलनी का उपयोग किया जाता है ताकि सभी नमूनों को बिन नुकसान के पुर्नप्राप्त किया जा सके।

बाल्टीः इसका उपयोग पानी लाने के लिए किया जाता है। कभी–कभी नमूनों को बेहतर देखने और फोटोग्राफी के लिए भी धोया जाता है। महीन नमूने बह न जाए इसलिए ध्यान रखें।

मापने के फीतेः ये कम से कम 50'–100' लंबे होने चाहिए।

छोटे औजार : सावधानीपूर्वक उत्खनन के लिए कन्नियाँ, एक कठोर महीने नोकदार कुदाली और कम चौड़ाई के पेंट ब्रश लगभग 2 इंच चौड़े। इन्हें शुष्क और ढीली मिट्टी को हटाने और फोटोग्राफी के लिए नमूने धोने के लिए उपयोग किया जाता है। भारी ब्रश, डैस्ट–पैन्स, जेब में रखने लायक दिक्सूचक, नोटपेपर, वर्गीकृत कागज, रिक्त फार्म उपलब्ध वस्तुओं के अभिलेखन और शिल्पकृतियों के सूचीकरण के लिए, कपड़े का थैला, मजबूत कागज की थैलियां, दिया सिलाई की डिबिया धातु या पेपर टैग थैलों इत्यादि की चिहिंत करने के लिए।

सिरे वाली कलमें बक्से और थैले को चिहिंत करने के लिए मोटे कागज के बक्से सामग्री भंडारण के लिए और लकड़ी के बक्से कंकाल अवशेष, लकड़ी के खूंटों या लौहे कीलों के संग्रहण के लिए। ये कम से कम एक फुट लंबे होने चाहिए। कैमरा, कलम, पेंसिल अन्य महत्वपूर्ण औजार हैं।

अपनी प्रगति जांचे

4. उत्खनन के लिए कौन से उपकरण अपेक्षित हैं?

....

....

....

3.5 संरक्षण और परीक्षण

सबसे पहले यह अतिआवश्यक है कि प्रत्येक खोज को सूचीबद्ध किया जाए। शिल्प–तथ्य के विशिष्ट स्रोत का उल्लेख किया जाना चाहिए। प्रत्येक की तालिका

या संग्रहालय संख्या होनी चाहिए। प्रत्येक विशिष्ट खोज को वास्तविक नाप–जोख के साथ अलग–अलग पन्नों पर रेखा चित्र के साथ दर्ज करना चाहिए। अंतिम विश्लेषण सूचीपत्र में दर्ज तथ्यों से किया जाएगा। सूचीपत्र को सावधानीपूर्वक संरक्षित किया जाना चाहिए। मानव के पास शिल्पकृतियों के उत्पादन की अत्यधिक क्षमता है। वे बहुत शुरूआती समय से ऐसी वस्तुओं का निर्माण कर रहे हैं, जब वे जानवर से मानव बन रहे थे। मानव शिल्प–तथ्य उत्पादन के करीब बीस लाख वर्ष बीत चुके हैं। मानव की कलात्मक और अन्य रचनाओं को प्राकृतिक आपदाओं और मानवजनित कारकों ने नष्ट कर दिया है। वर्तमान में मानव गतिविधि की भौतिक संस्कृति का केवल एक छोटा हिस्सा उपलब्ध है। ये मानवजाति की विरासत है। यह वर्तमान पीढ़ी की जिम्मेदारी है कि भविष्य के शोध के लिए इस विरासत को संरक्षित और सुरक्षित रखें। चूंकि इन वस्तुओं में बहुत सा अप्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इसलिए यह आवश्यक है कि वर्तमान पीढ़ी भावी पीढ़ियों के लिए इन लुप्त हो रही वस्तुओं को एकत्र करके उचित रूप से इन्हें परिरक्षत करें। मानवजाति के पुरातात्विक, ऐतिहासिक और जातिगत कृतियों के बहुत से कलात्मक, सौन्दर्यपरक और कार्यात्मक पहलु हैं, और वे मानव सभ्यता के सूचकांक के रूप में कार्य करते हैं, जिससे जैव–संस्कृति विकास को समझने के लिए साक्ष्य मिलते है। ऐसी सामग्री के नुकसान की भरपाई नहीं हो सकती। इसलिए यह सभी संस्कृति इतिहासकारों और वैज्ञानिकों की प्राथमिक जिम्मेदारी है कि प्रयोगशालाओं और संग्रहालयों में अनुसंधान के साथ–साथ जनता के प्रदर्शन के लिए इन वस्तुओं को संरक्षित और परिरक्षित करने के लिए सभी सावधानी बरतें। संग्रहालय के प्रबंधन के लिए संग्रह, परिवहन, भौतिक सफाई, रासायनिक उपचार, प्रदर्शन इत्यादि जैसे पहलुओं पर ज्ञान की आवश्यकता है।

3.5.1 पुरातात्विक वस्तुओं की देखभाल और प्रबंधन

पुरातात्विक खोजें, मानवजाति की अनमोल विरासत हैं। इसलिए मानव निर्मित वस्तुओं के संरक्षण के लिए उचित देखभाल आवश्यक है। जो सामग्री तापमान, नमी, प्रकाश, कवक, कीट, कीड़े आदि जैसे जैविक प्राणियों को प्रति अतिसंवेदनशील है। परीक्षण के कई उद्देश्य हैं, अनुसंधान, शिक्षा और लोगों के ज्ञान के लिए, अर्थात् यदि एक शिक्षण और अनुसंधान विभाग या सरकारी या निजी संगठन के जो लोग इस काम में लगे हैं तो उनका कर्तव्य है कि वस्तुओं की उचित तरीके से देखभाल और परीक्षण करें ताकि वस्तुएं लंबे समय तक बची रहें।

3.6 सारांश

पुरातात्विक मानवविज्ञान की मूल विधि मानवों द्वारा निर्मित और अनिर्मित शिल्पकृतियों की पहचान और वर्गीकरण करना है। विशेषणिक विशेषताएं जिसे गुण के रूप में भी जाना जाता है, के आधार पर शिल्पकृतियों को प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। ये जब समान प्रकार और बार–बार पाए जाते हैं, तो इसे संस्कृति के रूप में जाना जाता है। संस्कृति एक विशिष्ट स्थान इलाका या क्षेत्र में पाई जा सकती है। जब एक विस्तृत क्षेत्र में समान संस्कृतियाँ पाई जाती हैं तो इसे परंपरा कहा जाता है। शुरूआती समय के शिल्पकृतियों के संग्रह के लिए कई विधियां हैं। जब सतह सर्वेक्षण होता है, इसे अन्वेषण कहा जाता है। जब प्रागैतिहासिक काल की शिल्पकृतियों को खोद कर निकाला जाता है तो इसे उत्खनन कहा जाता है। समय और स्थान महत्वपूर्ण हैं। समय को समझने के लिए तिथि–निर्धारण की विधियाँ हैं। भूवैज्ञानिक परतें समय आयाम का संकेत देती है। कार्यात्मक पहचान नृजाति–पुरातात्विक विधि द्वारा किया जाता है। इस विधि में वर्तमान समय के

समानांतर समय के साथ तुलना कर के प्रागैतिहासिक वस्तुओं का उसके निर्माताओं के लिए कुछ कृत्यों और मूल्यों को समझना है। अंत में एकत्रित शिल्पकृतियां को सूचीबद्ध किया जाना चाहिए और विश्लेषण करके उचित रूप से परिरक्षित किया जाना चाहिए।

3.7 संदर्भ

बिफोर्ड, एल. आर. (1972). द *इंटरप्रिटेशन ऑफ आर्कियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : सेमिनार प्रेस.

चाइल्ड, वी. जी. (1956). *पीसिंग टूगेदर द पास्ट.* लंदनः रूटलेज एंड केगन पॉल.

डी टेरा, एच व पैटरसन, टी.टी (1939). साइंटफिक ओरजिन ऑफ इंडियन प्रीहिस्ट्री एंड इस्ट कंट्रीब्यूशन टू द स्टडी ऑफ द कंट्रीज प्रीलिटरेट पास्ट. *इन इंडियाः कल्चर ऑफ साइंस ग्लोरियस पास्ट एंड ब्राइट फ्यूचर,* (पृ. सं. 493). कार्नेगी इंस्टीटयून ऑफ वाशिंगटन पब्लिकेशन.

ग्रीन, के. (2003) *आर्कियोलॉजी : एन इंट्रोडक्शनः द हिस्ट्री, प्रिंसिपल्स एंड मैथड्स इन मार्डन आर्कियोलऑजी.* रूटलेज टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप,ई–लाइब्रेरी.

हैरिस, ई. (1969). *प्रिंसिपल ऑफ आर्कियोलॉजिकल स्ट्रेटीग्राफी*, द्वितीय संस्करण, लंदनः एकेडमिक प्रेस.

हेस्टर, टी.आर., हेइजर, आर. एंड जान, ए. (1975). *फील्ड मैथड्स इन आर्कियोलॉजी.* कैलिफोर्निया मेफील्ड पब्लिशिंग कंपनी.

होले, एफ. एंड हीजर, आर. एफ. (1969). *ऐन इट्रोडक्शन टू प्रीहिस्टोरिक आर्कियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : हील्ट, रेनहार्ट एंड विंस्टन.

पाड्या,के. (2014). साइंटफिक ओरजिन ऑफ इंडियन प्रीहिस्ट्री एंड इस्ट कंट्रीब्यूशन टू द स्टडी ऑफ द कंट्रीज प्रीलिटरेट पास्ट, आर. सी. सोबती एंड जी. एस. राउतेला में (संपादित), *इन इंडिया : कल्चर ऑफ साइंस ग्लोरियस पास्ट एंड ब्राइट फ्यूचर,* (पृसं 57-75) दिल्ली : नरेन्द्र पब्लिशिंग हाउस.

संकालिया, एच.डी. (1977). *प्रीहिस्ट्री ऑफ इंडिया,* दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर.

व्हीलर, आर. ई. एम. (1956) *आर्कियोलॉजी फ्राम द अर्थ* (वाल्यूम 356). यूके : पेंग्विग बुक्स.

3.8 आपकी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर

1. पुरातात्विक स्थलों की निम्नलिखित तरीकों से पहचाना जा सकता है : (i) पुरातात्विक संदर्भ से; (ii) शिल्पकृतियों की सामग्री से; (iii) भौगोलिक स्थिति से; (iv) स्थल कार्य से संबंधित शिल्प–तथ्य सामग्री द्वारा।

2. पुरातत्व में अध्ययन की दो अलग–अलग विधियाँ हैं: अध्ययन की पहली विधि मानव और संस्कृति पर तथ्य का संग्रह है। यह अन्वेषण और उत्खनन के द्वारा किया जाता है। द्वितीय चरण एकत्रित सामाग्री और तथ्य के आयाम को तय करना है।

3. किसी दिए गए क्षेत्र की प्रागैतिहासिक पुरातत्व की समझ के लिए वैज्ञानिक तरीके से एक व्यवस्थित सर्वेक्षण किया जाता है। प्रागैतिहासिक मानवों के अवशेषों को खोजने के लिए इस तरह के सर्वेक्षण को अन्वेषण के रूप में जाना जाता है। अन्वेषण के विपरीत, उत्खनन में सतह के नीचे को सामग्री को खोद निकाल कर उसका अध्ययन शामिल है।

4. एक सही और वैज्ञानिक उत्खनन के लिए उचित और पर्याप्त उपकरण आवश्यक हैं। कुछ महत्वपूर्ण उपकरण नीचे दिए गए है:

   (ए) फावड़ा (बी) कुदाली (सी) मिट्टी छानने के लिए छलनी (डी) बाल्टी (ई) मापने का फीता (एफ) छोटे औजार : कन्नियां, रंग का ब्रुश, डस्ट–पेन्स, जेब में रखने लायक दिक्सूचक, नोटपेपर, वर्गांकित कागज, रिक्तफार्म, कपड़े का थैला, मजबूत कागज की थैलियां, दियासलाई, कीमत धातु या कागज तागा, उनी कपड़े सिरे वाली कलमें, मोटे कागज के बक्से, लकड़ी के बक्से, लकड़ी के खूंटी या लौहे कीलें, केमरा, कलम, पेंसिल आदि।

इकाई 4 पुरातत्व मानवविज्ञान के अंतःविषयक दृष्टिकोण*

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय

4.1 पर्यावरणीय पुरातत्व

4.1.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

4.1.2 पर्यावरण पुरातत्व के प्रकार

4.1.3 पुरातत्व मानवविज्ञान का महत्व

4.2 नृजाति–पुरातत्व/एथनोआर्कियोलॉजी

4.2.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

4.2.2 सादृश्य और प्रत्यक्ष ऐतिहासिक पद्धति

4.2.3 नृजाति–पुरातत्व के उदाहरण

4.3 प्रायोगिक पुरातत्व

4.3.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

4.3.2 प्रायोगिक पुरातत्व के लिए मापदंड

4.3.3 प्रायोगिक पुरातत्व के प्रकार

4.3.4 प्रायोगिक पुरातत्व के उदाहरण

4.4 सारांश

4.5 संदर्भ

4.6 आपकी प्रगति की जांच के लिए उत्तर

अधिगम के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे :

- पुरातात्विक मानवविज्ञान अंतर्विषयक में प्रयुक्त अंतर्विषयक पद्धतियों को समझने में;
- पर्यावरणीय पुरातत्व के विभिन्न घटकों को समझना और मानवविज्ञान में अतीत के पर्यावरण का अध्ययन कैसे किया जाता है; को जानने में
- पुरातत्व और मानवविज्ञान के बीच संवाद को समझने में, और लोगों के एक समूह का अध्ययन अतीत को समझने में कैसे सहायता कर सकता है;
- पुरातात्विक मानवविज्ञानमें प्रयोग के महत्व और उपयोग (कुछ मापदंडों को ध्यान में रखते हुए) को समझने में।

* डॉ. क्यू. माराक, मानवविज्ञान विभाग,नार्थ–इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (नेहू).

4.0 परिचय

वैज्ञानिक अनुसंधान के कई क्षेत्रों में अंतर्विषयक पद्धतियाँ लोकप्रिय हो गई हैं। मानवविज्ञान में भी अतीत की संस्कृतियों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने में अब नई विधियाँ और पद्धतियाँ प्रयुक्त होती हैं। पहले प्रयुक्त की गई विधियाँ और पद्धतियाँ एक विशेष विषय तक ही सीमित थे। लेकिन वर्तमान में, अधिक से अधिक मानवविज्ञानी विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं को व्यापक दृष्टिकोण से देखने लगे हैं, अन्य संबंधित क्षेत्रों से विधियों या विशेषज्ञता की लागू कर रहे हैं, या पूर्णयता विभिन्न शोध क्षेत्रों के विशेषज्ञों के साथ सहयोग कर रहे हैं।

पुरातात्विक मानवविज्ञान में भी, एक घटना की बेहतर और समग्र समझ के लिए अन्य विषयों और विशेषज्ञों द्वारा उपयोग किए जाने वाले विधियाँ और पद्धतियाँ का उपयोग किया जा रहा है। अन्य विषयों के मूल तत्वों को शामिल कर के नई विधियों की तैयार किया गया है और उपयोग में लाया जा रहा है।हम वर्तमान में पुरातात्विक मानव विज्ञान में अध्ययन किए गए निम्नलिखित तीन अंतःविषय दृष्टिकोणों पर चर्चा करेंगे।

4.1 पर्यावरण पुरातत्व

4.1.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

पर्यावरणीय पुरातत्व की विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं:

- पर्यावरण पुरातत्व अतीत की मानव पारिस्थितिकी है; अतीत मानव जनसमुदाय और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों को समझने की कोशिश करना है (बॉयड, 1990)।
- यह पारितंत्र के सामुदायिक पारिस्थितिकी से संबंधित है जिसमें होमो प्रजाति इसके तत्काल पूर्वज सक्रिय तत्व थे (कोल्स, 1995)।
- यह मानव और पारिस्थितिक जीवन तंत्र जिसमें वे रहते हैं के बीच गतिशील संबंधों को समझने के लिए निदेशित है....... पर्यावरण पुरातत्वविदों प्राकृतिक विज्ञान से जानकारी और तकनीक को पुरातात्विक निक्षेप के विश्लेषण के माध्यम से मानव अतीत के अध्ययन के लिए लागू करते हैं (रिट्ज एवं अन्य, 1996)।
- पर्यावरण पुरातत्व एक क्षेत्र है जो मानव पारिस्थितिकी को समझने के लिए निदेशित है। अंतिम लक्ष्य संस्कृति और पर्यावरण के बीच अंर्तसंबंध का निर्धारण करना है, जो कि प्रागैतिहासिक समाजों के मानव पारिस्थितिकी को पूरी समझ के लिए निदर्शित पुरातात्विक शोध पर जोर देता है (बटजर, 1982)।

पर्यावरण पुरातत्व, इसलिए प्राकृतिक दुनिया के साथ अतीत के मानवीय पारस्परिक क्रियाओं का अंतर्विषयक अध्ययन है – जिसमें पौधे, जानवर और भूदृश्य शामिल हैं। यह मानव और पर्यावरण का एक दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव का अध्ययन करता है। पर्यावरण पुरातत्व का उद्देश्य केवल पुरा–पर्यावरण में परिवर्तन के बारे में ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह पता लगाना है कि अतीत के लोग कैसे आसपास

के प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल होते थे, कैसे वे प्राकृतिक परिस्थिति से विभिन्न संसाधनों को प्राप्त करते थे और उन्होंने प्राकृतिक पर्यावरण को कैसे बदल दिया।

इस क्षेत्र को एक प्रमुख व्यक्ति हैं कार्ल बटजर, जो पर्यावरण पुरातत्व और संबंधित क्षेत्रों पर 15 से अधिक पुस्तकों के लेखक हैं।

4.1.2 पर्यावरण पुरातत्व के प्रकार

पर्यावरण पुरातत्व को दो उप–क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है : (ए) भू–पुरातत्व और (बी) जैव–पुरातत्व।

(ए) **भू–पुरातत्व** : भू–पुरातत्व में ''पर्यावरण'' भौगोलिक पर्यावरण की संदर्भित करता है। यह स्थलाकृति, भू विज्ञान, मृदा विज्ञान, भूगोल आदि के अवधारणाओं और शोध विधियों का उपयोग करता है। भू–पुरातत्वविद घटनाओं को एक विस्तृत श्रृंखला का अध्ययन करते हैं, जैसे कि उपकरण के लिए पत्थर या बर्तन के लिए चिकनी मिट्टी, स्थानीय भू–आकृति या स्थलाकृति और वे साक्ष्य जो अतीत में भूमि के उपयोग के अध्ययन के लिए मृदा प्रदान कर सकती है।

(बी) **जैव–पुरातत्व** : जैव–पुरातत्व में ''पर्यावरण'' प्राकृतिक पर्यावरण को संदर्भित करता है। यह वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, मानवविज्ञान आदि की अवधारणाओं और शोध विधियों का अनुकरण करता है। जैव पुरातत्व को आगे (i) प्राणिपुरातत्व और (ii) पुरावनस्पति विज्ञान में विभाजित किया जा सकता है। प्राणिपुरातत्वविद् पुरातात्विक संदर्भ से जानवरों के अवशेषों का अध्ययन करते हैं। ये अध्ययन अतीत के जीवन के तरीके, मानव आहार, बदले हुए परिदृश्य, जानवरों के प्रबंधन, अन्य जानवरों को आबादी पर मानव शोषण के प्रभाव और जानवरों और मानव के बीच अन्य पारस्परिक क्रियों को बेहतर समझ प्रदान करते हैं। दूसरी और पुरावनस्पति वैज्ञानिक पुरातात्विक स्थलों पर संरक्षित पौधों के अवशेष जिसमें लकड़ी, बीज, काष्टफल आदि के समष्टि अवशेष शामिल हैं, का अध्ययन करते हैं। क्योंकि ये नाजुक होते हैं, इन्हें केवल विशेष परिस्थितियों में संरक्षित किया जाता है (शुष्क, झुलसे हुए, जमे हुए, जलग्रस्त या पकी हुई मिट्टी में छाप के रूप में परिरक्षित किया जाता है)। वे पराग, पादपाश्म और बीजाणुओं जैसे सूक्ष्म अवशेषों का भी अध्ययन करते हैं, जो अक्सर मिट्टी में पाए जाते हैं, मिट्टी के बर्तनों में अवशेषों के रूप में, या पुरातावित्वक स्थलों के आसपास स्थिर जल निकायों के तलघट में।

अपनी प्रगति की जांच करें।

1. पर्यावरणीय पुरातत्व को कितने उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है? इन विभाजनों के संदर्भ में पर्यावरण को कैसे परिभाषित किया गया है।

....
....
....
....

4.1.3 पुरातत्व मानवविज्ञान का महत्व

पर्यावरण में पुरा–पर्यावरण अवशेषों का अध्ययन अक्सर शामिल होता है, यह देखने के लिए कि उस काल में कौन सी प्रजातियाँ मौजूद थी, साथ ही साथ लोग कैसे उनके साथ पारस्परिक व्यवहार करते थे और उनका उपयोग करते थे। इसमें भौतिक वातावरण, लोगों के लिए क्या संसाधन उपलब्ध होते होंगे और उनका उपयोग कैसे किया जा सकता था की जांच करना भी शामिल हो सकता है। यह विषय तब भी उपयोगी है जब मानव निर्मित पुरावशेष स्थल से अनुपस्थित हो या पृथ्वी की हलचल के मामलों में, जैसे कि क्षरण, जिसमें स्थलों के पुरावशेष और लक्ष्य भूमिगत हो सकती हैं।

अतीत के वातावरण की फिर से संगठित करने से पुरातत्वविदों को यह पता चलता है कि जीवित रहने के लिए अतीत के लोगों को किस अनुकूलन की जरूरत थी, और कौन से पर्यावरणीय परिवर्तनों ने उनके लोप होने में भूमिका निभाई होगी।

पर्यावरण पुरातत्वविदों का अन्य विद्वानों से जो इन घटनाओं की प्राचीन अभिव्यक्तियों का अध्ययन करते हैं (जैसे जीवाश्म विज्ञानी या भू–आकारिकी विज्ञानी) जो अलग पहचान बनाता है, वह है पर्यावरण पुरातत्वविदों का लोगों और प्राकृतिक रूप से होने वाली घटनाओं को बीच परस्पर क्रिया में दिलचस्पी लेना। वे अध्ययन करते हैं कि प्राकृतिक रूप से घटने वाली घटनाएं मानव गतिविधि (जैसे, मिट्टी के विकास पर खेती का प्रभाव) से कैसे प्रभावित हुई हैं, पर्यावरण के कुछ घटक को प्रत्यक्ष रूप से कैसे उपयोग किया गया है (जैसे, कौन से पौध किस विशेष समुदाय द्वारा एकत्रित किया गया था), या कैसे एक विशेष समय और स्थान में संस्कृति/पर्यावरण गतिशील कार्य करते थे (जैसे जलवायु परिवर्तन का अध्ययन और मानव समाज पर इसका प्रभाव) (ड्राइवर, 2001)।

4.2 नृजाति–पुरातत्व

4.2.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

नृजाति–पुरातत्व (एथनोआर्कियोलॉजी) की 50 से अधिक परिभाषाएँ हैं। आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली कुछ परिभाषाओं में निम्नलिखित शामिल हैं :

- नृजाति पुरातत्व जीवित, गैर–औद्योगिक लोगों के बीच पुरावशेषों का निर्माण वितरण, अर्थ, उपयोग व उनके संस्थागत परिवेश और सामाजिक इकाई का प्रत्यक्ष अवलोकन क्षेत्र अध्ययन है जो कि पुरातत्व सादृश्यता और निष्कर्ष की सहायता के लिए बेहतर व्याख्यात्मक मॉडल के निर्माण के लिए किया जाता है। (स्टैनिस्लावस्को, 1974)।
- यह एक पुरातात्विक उद्देश्य के लिए एक नृवंशविज्ञान शोध है जो भौतिक अवशेषों का मानव व्यवहार से संबध स्थापित करता है, जिसके परिणामस्वरूप वे फलित हुए (गोल्ड, 1978)।
- यह न तो एक सिद्धांत है और न ही कोई विधि है, लेकिन एक शोध कार्यनीति हैजो संस्कृति के साथ भौतिक संस्कृति के पूर्णरूपेण संबंधों को समझने के लिए दृष्टिकोणों की एक श्रृंखला को सम्मिलित करता है दोनों एक जीवित संदर्भ में और जैसे यह पुरातात्विक रिकॉर्ड में प्रवेश करता है, ऐसे ज्ञान के

> लाभ का इस्तेमाल पुरातात्विक अवधारणाओं की जानकारी देने और व्याख्या को बेहतर बनाने के उद्देश्य के लिए (.......... यह है) पुरातात्विक दृष्टिकोण से जीवित संस्कृतियों का नृवंशविज्ञान अध्ययन (डेविड और क्रेमर, 2001)।

दूसरे शब्दों में नृजाति–पुरातत्व पुरातात्विक रिकॉर्ड की समझ और व्याख्या में सहायता करने के लिए जीवित समाजों का अध्ययन है। उदाहरण के लिए एक एस्किमों शिकार शिविर में रह कर, इसमें रहने वालों की गतिविधियों को देखने से, पुरातत्वविदों को पुरातात्विक रूप से विचार योग्य तरीकों के अभिलेखन की उम्मीद होती है, इस बोध के साथ कि कौन सी गतिविधियां उन्हें अस्तित्व में लाती हैं (फगन, 2001)। पुरातत्वविद वास्तव में सैन शिविर स्थलों में रहते थे, फिर बाद में वापस चले गए और वहाँ पर पुरावशेषों के छितराव का अभिलेखन किया या उनका उत्खनित किया (येलन, 1977)।

इस शब्द का पहली बार प्रयोग जेसी फ्यूक्स ने 1900 में किया था, लेकिन नृजाति–पुरातत्व के प्रारंभिक रूप आधुनिक सांस्कृतिक आंकड़ों को अतीत पर बहुतायता से लागू कर रहे थे। हाल के दशकों में पुरातत्वविदों ने मानव विज्ञान संबंधी आंकड़ों के प्रत्यक्ष अनुप्रयोग को अधिक गंभीर दृष्टिकोण से लिया है, फिर भी एथनोग्राफिक आंकड़ों का उपयोग कर रहे हैं, लेकिन सावधानी के लिए तर्क कर रहे हैं। सबसे पुराने नृजाति–पुरातात्विक कार्य आखेट–संग्रहकर्ता शिविरों के अध्ययन पर केंद्रित थे जो ओल्डुवाई गॉर्ज के प्रारंभिक मानव शिविरों की व्याख्या करने के तरीके प्रदान कर सकते हैं (फगन, 2001)। लेकिन बाद के कार्य का प्रमुख केंद्र–बिंदु अनुमान के पुरातात्विक पद्धतियाँ को विकसित करना था जो अतीत और वर्तमान के बीच का अंतर मिटा सके (केमरोन और टोमका, 1993)। आज विषय–वस्तु की एक विस्तृत श्रृंखला की जांच नृजाति–पुरातत्वविदों द्वारा की गई है, जिसमें शिल्प–तथ्य निर्माण की विभिन्न प्रौद्योगिकियाँ, शिल्प–तथ्य स्वरूप, अर्थ और स्थानिक परिणाम; स्थान की सामाजिक और प्रतीकात्मक संरचना; शिल्प–तथ्य शैली का स्थान और अर्थ, और स्थल के रखरखाव, परित्याग और क्षय की प्रक्रियाएं शामिल हैं।

4.2.2 सादृश्य और ऐतिहासिक पद्धति का उपयोग

सादृश्य तर्क की प्रक्रिया है, जो मानता है कि यदि वस्तुओं में समान गुण हैं, तो वे अन्य समानताएं भी साझा करेंगे (फगन, 2001)। पुरातत्व में सादृश्य गैर–देखे गए व्यवहार के लिए देखे गए व्यवहार लागू करना है। यह शायद पुरातात्विक व्याख्या में सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले शोध साधनों में से एक है। सादृश्यता उन संस्कृतियों के बीच सर्वश्रेष्ठ रूप से की जा सकती जो समान वातावरण साझा करती हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन संस्कृतियों का अपने पर्यावास के साथ पारस्परिक क्रिया उन तरीकों से होनी चाहिए, जो एक दूसरे से तुलनीय है।(एश्यर, 1961) यह पुरातात्विक शोध के लिए सबसे महत्वपूर्ण है (होडर, 1999)।

पुरातत्व में उपयोग की जाने वाली सादृश्यताएँ औपचारिक या संबंधपरक हो सकती हैं। औपचारिक सादृश्यताएँ इस धारणा पर आधारित हैं कि चूंकि दो शिल्प तथ्य रूप या आकार में समानता साझा करती हैं, इसलिए वे अन्य गुणों को भी साझा करने की संभावना रखती हैं (लेन, 2014)। 1971 के एक अध्ययन में, गोल्ड और उसकी टीम (गोल्ड, 1971) ने मुस्तीरी खुरचनियों और आधुनिक पश्चिमी रेगिस्तान आदिवासी खुरचनियों के कार्य–धार कोणों की तुलना की और मुस्तीरी कोणों को तीव्र ढलानवाला

पाया। गोल्ड का कहना था कि इसका कारण यह है कि मुस्तीरी मानव–सम की अपेक्षा में पश्चिमी रेगिस्तानी आदिवासी खुरचनियों को अधिक पुनर्गठित करते थे। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि तुलना के लिए एथनोग्राफिक उपकरण उपयोग का अध्ययन कर के इस विधि को यह निर्धारित करने के लिए नियोजित किया जा सकता है कि किस उपकरण का उपयोग किया गया था।

संबंधपरक समरूपता औपचारिक समरूपता से भिन्न होती हैं। यहाँ, केवल निष्कर्ष निकालने के बजाय, मानववंशी शिल्प–तथ्य और पुरातात्विक शिल्प–तथ्य के बीच के संबंध की साबित करना जरूरी है (लेन, 2014)।

पुरातत्वविद कई तरीकों से सादृश्यताओं का विकास करते हैं। एक पद्धति प्रत्यक्ष ऐतिहासिक पद्धति है, जो विदित से अविदित तक की प्रक्रिया के सामान्य सिद्धांत का उपयोग करता है। यह पद्धति जीवित संस्कृतियों पर निर्भर करती है जो पुरातात्विक रूचि की संस्कृति से निकटता से संबंधित हो सकती है ताकि उन सादृश्यताओं का निर्माण किया जा सके जो खोजों की व्याख्या करने के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं। गॉल्ड (1971) बताते हैं कि पुरातत्वविदों को नृवंशी सामग्री और शिल्प–तथ्यों के साथ पाए जाने वाले उपकरणों के बीच अंतर की मात्रा को मापने में कैसे सक्षम होना चाहिए।

4.2.3 नृजाति–पुरातत्व के उदाहरण

- *कालाहारी रेगिस्तान के कुंग सैन* : कालाहारी के कुंग सैन का अध्ययन रिचर्ड ली (1976) और जॉन येलन (1977) सहित कई लोगों ने किया है। रिचर्ड ली ने कई वर्षों तक सैन आखेट–संग्रहकर्ता के मानव पारिस्थितिकी का अध्ययन किया। ली (1976) ने सैन के भी खाद्य संग्रह और आखेट की आदतों का अवलोकन किया। जॉन येलन (1977) ने घर और शिविर की व्यवस्था, चूल्हा स्थान, जनगणना की जानकारी और अस्थि कचरे का अवलोकन किया। उन्होंने बताया कि एक सैन शिविर सचेतन कृत्यों के माध्यम से विकसित होता है, जैसे, वातरोधक और चूल्हे का निर्माण तथा प्रासंगिक कार्यों के माध्यम से, जैसे कि कचरा और निर्माण के मलवे को फेंक देना। उन्होंने शिविरों में सार्वजनिक क्षेत्रों को पहचान की, जो अक्सर बस्ती के बीच में होते थे, जो विशेष रूप से किसी के नहीं होते थे और पारिवारिक क्षेत्र चूल्हे के पास के स्थान पर केन्द्रित थे जो व्यक्तिगत परिवारों से संबंधित थे। शिविर के सदस्यों को सार्वजनिक गतिविधियाँ जैसे नृत्य और मांस का पहला वितरण खुले स्थानों में होता है जो किसी भी परिवार से संबंधित नहीं होता है। इस तरह की गतिविधियाँ पुरातात्विक रिकॉर्ड में कुछ निशान छोड़ती हैं। खाना पकाना और खाद्य प्रसंस्करण के साथ–साथ शिल्प–तथ्यों का निर्माण आमतौर पर पारिवारिक चूल्हों के पास के स्थान के आसपास होता है। येलन (1977) ने इस उदाहरण में कुद दिलचस्प बदलावों की ओर इशारा किया – (क) एक चूल्हे के पास के स्थान पर होने वाली विनिर्माण गतिविधियों में कभी–कभी अन्य परिवारों के लोग भी शामिल होते थे; (ख) बड़ी खाले आमतौर पर कीड़े–मकौड़े और मांसाहारी–पशुओं के कारण मुख्य जीवनयापी क्षेत्र से दूर उपचार के लिए तान कर रखते थे, (ग) कभी–कभी गर्म दिनों में भारी छाया के खंडों का लाभ उठाने के लिए गतिविधि क्षेत्रों की आसपास स्थानांतरित कर दिया जाता था; और (घ) ऐसे गतिविधि क्षेत्रों की

पहचान हाल ही में परितक्त स्थलों पर की जा सकती है, जहाँ छोड़े गए काष्टफल और काष्ठकोयले के टुकड़ें शिविरों के बाहर बिखरे पड़े होते हैं।

- *नुनामिउट एस्किमो :* लुईस बिनफोर्ड (1978) और उनके छात्रों ने अलास्का के नुनामिउट एस्कीमों का अध्ययन किया जिनका 80 प्रतिशत निर्वाह *कैरीबू* के शिकार से होता हैं। उन्होंने नुनामिउट एस्कीमो की प्राप्ति, प्रसंस्करण और उपभोग की युक्तियों का पता लगाने और इन व्यवहारों को उनके प्राणिजात परिणामों से सीधे संबंधित करने की कोशिश की। उन्होंने उनके आखेट के तरीकों, कसाई और मांस वितरण, भंडारण और पुनः वितरण का विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य पता चलते हैः (अ) स्थानीय अनुकूलन के परिणामस्वरूप पुरातात्विक स्थलों में भिन्नता; (ख)एक संस्कृति के भीतर अंतर क्षेत्रीय भिन्नताएं भी हो सकती हैं; (ग) लोगों को निर्णय लेने को प्रभावित करने वाली अनुकूली युक्तियाँ और कारक स्थिर रह सकते है, भले ही पुरातात्विक अवशेषों में बहुत भिन्नता हो; (घ) प्रस्तर उपकरणो की बारंबारता या मिट्टी के बर्तन के रूप में परिवर्तन अनुकूलन में बिल्कुल भी कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं दर्शा सकता है।

आखेट–संग्रहकर्ताओं के अध्ययन से साबित होता है कि पुरातत्वविद अब यह नहीं मान सकते कि पुरातात्विक रिकॉर्ड में सभी विभिन्नता सीधे सांस्कृतिक समानता और भिन्नता से संबंधित है। बिनफोर्ड और अन्यों विद्वानों ने मुख्य रूप से एक कार्यात्मक, व्यवहारिक और पारिस्थितिक अध्ययन किया।

अपनी प्रगति की जांच करें।

2. नृजाति–पुरातत्व क्या है? दो उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

4.3 प्रायोगिक पुरातत्व

4.3.1 परिभाषा और विषय क्षेत्र

- प्रायोगिक पुरातत्व उन प्रयोगों की एक श्रेणी को संदर्भित करता है जो ऐसी कार्यवाही के लिए जरूरी होते हैं जिसमें विषय की रचना या विषय की रचना और प्रयोग एक तरह से अतीत का अनुकरण करता है (एशर, 1961)।

- यह पुरातात्विक अनुसंधान के सभी स्तरों में विधि, तकनीक, धारणा, परिकल्पना और सिद्धांतों का परीक्षण, मूल्यांकन और व्याख्या करने के लिए उपयोग किया जाने वाला व्यवस्थित दृष्टिकोण है (इंगरसोल एवं अन्य, 1977)।

- यह मिथ्या परिकल्पना का परीक्षण करने या व्यवस्थित रूप से डेटा एकत्र करने के लिए अतीत प्रक्रियाओं की पुनरावृत्ति है (फ्लोरेस एवं अन्य, 2014)।

- प्रायोगिक पुरातत्व एक दृष्टिकोण है जो प्राचीन संरचनाओं या शिल्प–तथ्यों जैसी पुरातात्विक स्रोत सामग्री के आधार पर परिकल्पना या एक व्याख्या उत्पन्न करने और परीक्षण करने के लिए विभिन्न तरीकों, तकनीकों, विश्लेषणों और दृष्टिकोणों को नियोजित करता है (मैथ्यु, 2002)।

कोल्स, 1979 का कहना है कि प्रायोगिक पुरातत्व का उद्देश्य पूर्व की परिस्थितियों और दशा को पुनः उत्पन्न करना है, जबकि मैथ्यु (2002) का कहना है कि इसे अतीत कि घटनाओं की प्रतिकृति बनाने के लिए बनाया गया है। हालांकि, हमें उन अदिम प्रौद्योगिकी के साथ भ्रमित नहीं होनी चाहिए जो किसी पुरातात्विक या ऐतिहासिक साक्ष्य से संबंधित नहीं हैं, और आमतौर पर मनोरंजन के शौक के रूप में या एक विशिष्ट प्रागैतिहासिक काल के काल्पनिक वातावरण का प्रदर्शन करने के लिए किया जाता है (फगन, 2001)।

प्रायोगिक पुरातत्व की शुरूआत यूरोप में 18वीं शताब्दी में हुई जब लोगों ने स्कैंडेनेविया और ब्रिटेन में पीट बोग्स से प्राप्त कांस्य, तुरहीयों को फूंक से बजाने की कोशिश की। आयरलैंड में डब्लिन के रॉबर्ट बॉल ने वर्षों के प्रयोग के बाद एक सांड के समान गहरी मंद्र ध्वनि उत्पन्न करने में सक्षम हुए। अपने एक उत्साही प्रयोग में उनकी एक रक्त वाहिका फट गई और उनकी मृत्यु हो गई। हालांकि, प्रायोगिक पुरातत्व की वास्तव शुरूआत बीसवीं सदी के मध्य में हुई। इस दृष्टिकोण को बनाने में मदद करने में मूल याही अमेरिकी के अंतिम जीवित सदस्यों में से एक, ईशी का मिलना था। भले ही ईशी की कहानी एक दुखद कहानी है, लेकिन उन्होंने मूल अमेरिकी प्रौद्योगिकी के बारे में ज्ञान का एक भंडार अपने पीछे छोड़ दिया जैसे फंदा और जाल बिछाना। इशी अपने घर मानवविज्ञानी अल्फ्रेड क्रोबर और अन्य लोगों के साथ गया था, जिन्होंने उसके जीवन और व्यवहार को उसकी मातृभूमि में और बर्कले संग्रहालय में, जहाँ उन्होंने अपने आखिरी कुछ वर्ष बिताए थे, का दस्तावेजीकरण किया।

प्रायोगिक पुरातत्व के क्षेत्र में प्रस्तर (पत्थर) के काम का सबसे अधिक अध्ययन किया गया है – कैसे और किस तरह से प्रागैतिहासिक लोगों ने प्रस्तर के उपकरणों को बनाया और उनका उपयोग किया। कुछ समर्पित वैज्ञानिकों ने प्रस्तर उपकरणों के साथ प्रयोग करके वर्षों बिताए हैं। मुख्य रूप से फ्रांस के फ्रांकोइस बोर्ड्स और तत्कालीन सोवियत संघ के एस.ए. सेमेनोव जैसे विद्वानों के लगातार प्रयत्न–त्रृटि प्रयासों के माध्यम से प्रस्तर उपकरणों के निर्माण की प्रक्रिया के बारे में भारी मात्रा में पुनः खोज कर पाए (हर्स्ट,1974)। इडाहो के एक पशुपालन डॉन क्रैबट्री ने फॉलसम अस्त्राग्र (मूल रूप से 9000 से 11000 साल पूर्व मूल अमेरिकी द्वारा आखेट हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया था) की प्रतिकृति बनाने की कोशिश में 40 से अधिक वर्षों के लिए काम किया था। वह अंततः बहुत विभिन्न और सुंदर अस्त्राग्र निर्माण करने में सक्षम हुआ, और शल्क हटाने के 11 विभिन्न तरीकों को अभिलिखित किया।

4.3.2 प्रायोगिक पुरातत्व के लिए मापदंड

प्रस्तर (पत्थर) उपकरण प्रौद्योगिकी पर उत्साही प्रयोगो ने खूबसूरती से शल्कित पत्थरों के औजारों की प्रतिकृति का निर्माण किया है। हालांकि, इन पत्थरों के औजारों का निर्माण, यह प्रश्न करते हैं कि क्या इन औजारों को मात्र प्रतिकृति या कुछ हजारों साल पहले अतीत के एक युग में प्रागैतिहासिक लोग क्या, क्यों और कैसे रहते थे का जवाब मात्र हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि हम कभी निश्चित नहीं हो सकते। हालांकि, अतीत प्रौद्योगिकी या घटना की प्रतिकृति का निर्माण करते समय कुछ निश्चित मानदंड होते हैं जिनका पालन करना होता है।

प्रायोगिक पुरातत्व के लिए आवश्यक मानदंड निम्नलिखित हैं :

1. प्रयोगों में प्रयुक्त सामग्री स्थानीय स्तर पर प्रागैतिहासिक समाज में उपलब्ध होनी चाहिए, जिसका अध्ययन कर रहा है;

2. विधियों को समाज की तकनीकी क्षमताओं के अनुरूप होना चाहिए। आधुनिक तकनीक को हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए;

3. परिणाम दोहराने योग्य होने चाहिए और उन परीक्षणों से युक्त होना चाहिए जो सुझाए गए निष्कर्षों की ओर ले जाते हैं।

अपनी प्रगति की जांच करें।

3. एक कलाकृति निर्माण एवं प्रयोग के समय, जैसे पत्थर की एक हस्त कुल्हाड़ी, वे कौन से महत्वपूर्ण मानदंड हैं जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए?

....

....

....

....

4.3.3 प्रायोगिक पुरातत्व के प्रकार

रेनॉल्ड्स (1999) ने प्रायोगिक पुरातत्व में पांच प्रमुख प्रकार के प्रयोगों का उल्लेख किया है, जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है :

1. *निर्माण* : 1:1 पैमाने के निर्माण जो पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर संरचना (जैसे कि घर) के लिए एक काल्पनिक डिजाइन का परीक्षण करते हैं।

2. *प्रक्रिया और कार्य परीक्षण* : अतीत में चीजें कैसे हासिल की गई, इसकी जांच। इसमें इस बात की जांच शामिल है कि कौन से उपकरण थे, उनका उपयोग कैसे किया गया और अन्य तकनीकी प्रक्रियाएं कैसे हासिल की गई।

3. *अनुरूपण :* पुरातात्विक अभिलेख और निक्षेपण के बाद जैव सामग्री की गठन प्रक्रियाओं में प्रायोगिक जांच।

4. *संभाव्यता परीक्षण* : आमतौर पर उपरोक्त तीनों श्रेणियों को मिलाकर, ये बड़े पैमाने पर लंबी अवधि के प्रयोग होते हैं जो जटिल प्रणालियों (जैसे कृषि) और अनपेक्षित या दुर्लभ घटनाओं (जैसे चरम मौसम) के कारण होने वाले विविधताओं का विवरणपट्ट बनाते हैं।

5. *प्रौद्योगिकी नवाचार :* पुरातात्विक तकनीक का जहां स्वयं यर्थाथवादी परिदृश्य में परीक्षण होता है।

4.3.4 प्रायोगिक पुरातत्व का उदाहरण

- सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक 1947 में थोर हेयर्डहल द्वारा किया गया कोन टिकी अभियान है, जिसमें उन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया कि पोलिनेशिया को साहसिक पेरूवासियों (हेयर्डहल, 1950) द्वारा बसाया गया था। उस समय लोकप्रिय सिद्धांत यह था कि यह दक्षिण पूर्व एशियाई लोगों

द्वारा उपनिवेशित किया गया था। लट्ठों के बेड़े पर 101 दिनों की जलयात्रा के बाद, जिसे बेल्सा कुन्दों से उस तरीके से बनाया गया जिसका उल्लेख 16वीं शताब्दी की एक स्पैनिश विवरण में किया गया था, वह पोलिनेशिया के तुमातु द्वीप तक पहुँचने में सफल रहा। उनके इस प्रयोग ने साबित कर दिया कि दक्षिण अमेरिका के लोग समुद्र पर इतनी लंबी यात्रा कर सकते हैं, हालांकि यह साबित नहीं हुआ कि यह पेरूवासियों ने ही किया था।

- उपकरण प्रौद्योगिकी पर कई प्रयोग किए गए हैं। यूरोप में और अन्य जगहों पर जंगलों की सफाई पर कई प्रयोग किए गए हैं। एक डेनिश प्रयोग से प्राप्त अनुमान के अनुसार एक मनुष्य एक हफ्ते में आधा एकड़ जंगल साफ कर सकता है। पश्चिम अफ्रीका और मेसोअमेरिका में वृक्ष–वलयों और आगजनी को प्रभावी वृक्ष भरण तकनीक के रूप में दिखाया गया है। कृषि को लेकर प्रयोग दक्षिणी माया तराई और मेसा बर्डे नेशनल पार्क में भी किए गए हैं। बाद का प्रयोग सत्रह साल तक चला। इस प्रयोग में डेढ़ एकड़ भूमि में मक्का, फलियाँ और अन्य ऐसी फसलें लगाई गई थी। सत्रह वर्षों में से 2 को छोड़ कर, जब सुखा था, अच्छी पैदावार प्राप्त हुई (फगन, 2001)।

- सबसे लंबे समय तक चलने वाले प्रयोगों में से एक इंग्लैंड में ओवरटॉन डाउन अर्थवर्क है, जो 128 वर्षों तक चला। यहाँ कुछ पुरातात्विक सामग्री जैसे मिट्टी के बर्तन, हड्डी, चमड़ा, लकड़ी, कपड़ा आदि को मिट्टी के खुदाई के काम में दफनाया गया था, इसके क्षय रूप का अध्ययन करने के लिए इन्हें अंतराल पर खंडित किया जाता था और खोद निकाला जाता था।

अपनी प्रगति को जांचें।

4. किसने प्रायोगिक पुरातत्व में प्रमुख प्रकार के प्रयोगों को परिभाषित किया। सभी प्रमुख प्रकारों के नाम बताइए।

....

....

....

....

4.4 सारांश

मानव व्यवहार जटिल है और इसका पुनर्निर्माण उस विशाल समय अंतराल से जो हमें हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों से अलग करता है और संरक्षण परिस्थितियों की कठिनाइयों के कारण पेचीदा होता है। ऐसे परिदृश्य में यह समझने के लिए कि किसी वातावरण में प्राचीन मानव कैसे व्यवहार करते थे, नए तरीकों और तकनीकों के साथ नए दृष्टिकोण का उपयोग करना होगा। वर्तमान में, अतीत का पुनर्निर्माण प्रकृति में अंतर्विषयक बन गया है, साथ में विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक हमारी समझ में सहायता प्रदान करता हैं।

पुरामानव या मानव सम (होमोनिड) व्यवहार के कई पहलुओं को कभी पूरी तरह से समझा नहीं जा सका। हालांकि, कुछ पर अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन ये कभी प्रमाणित नहीं हुए। एक पुरातत्वविद जिस वास्तविक सामग्री के साथ काम

करता है वे अपर्याप्त और अत्यधिक पूर्वाग्रही होते हैं। इस दृष्टिकोण से सभी संभावित रास्ते तलाशे और प्रोत्साहित किए जाने चाहिए। पर्यावरण पुरातत्व, नृवंशविज्ञान और प्रायोगिक पुरातत्व वे दृष्टिकोण हैं जो इस दिशा में आगे बढ़ने के कई तरीके प्रदान करते हैं।

4.5 संदर्भ

बटजर, के. डब्ल्यू. (1982), *आर्कीआलजी ऐज ह्यूमन ईकोलाजीः मैथड एंड थियरी फार ए कन्टेक्स्चूअल ऐपरोच.* न्यूयार्क : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

कैमरोन, ई. एम. एंड एस. ए. टोमका (1993), *अबैन्डन्मन्ट ऑफ सेटल्मन्टस एंड रीजन्सः एथ्नोआर्कीआलजिकल एंड आर्कीआलजिकल अप्रोचेज़.* कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोल्स, जी. सी. (1995), 'द टीचिंग ऑफ इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजी इन हाइअर एजुकेशन इन द यूनाइटेड किंगडम'.अन्पब्लिश्ड वर्किंग पेपर ऑफ द एसोसिएशन फॉर इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजी. 1, यार्क. ओ' कोनर, टी. पी. (1998), 'इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजीः ए मैटर ऑफ डेफनिशन' *इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजी,* 2 : 1–6. से उद्धृत किया गया.

कोल्स, जे. एम. (1979), *इक्स्पेरिमेन्टल आर्कीआलजी.* लंदन : एकेडेमिक प्रेस.

डेविड, एन. एंड क्रेमर.सी. एंड निकोलस, डी.जे. (2001), *एथनोआर्कीआलजी इन एक्शन.* कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

ड्राइवर, जे. (2001). 'इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजी इज नाट हायूमन पेलेओईकालजी, *इन्वाइरन्मेन्टल आर्कीआलजी : मीनिंग एंड पर्पस.* (पृ.सं 43–54).स्प्रीगर,डारड्रेच

फगन, बी. एम. (2001), *इन द बिगिनिंग : एन इंट्रोडक्शन टू आर्कीआलजी.* न्यू जर्सी : लिंडब्रियर कॉर्प, प्रेंटिस–हॉल.

रेइट्रज, ई. जे., एल. ए. न्यूयॉर्क एंड एस. जे. स्क्डर.(1996). केस स्टडीज इन इन्वारन्मेन्टल आर्कीआलजी (संपा). न्यूयॉर्कः प्लेनम प्रेस.

रेनॉल्डस, पी. जे. (1999), 'द नेचर आफ इक्स्पेरिमेन्ट इन आर्कीआलजी'. इन ए. एफ. हार्डिंग (संपा), *इकस्पेरिमेन्ट एंड डिजाईन : आकीआलजिकल स्टडीज इन आनर ऑफ जॉन कोल्स.* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सबो. पृ.सं (156–162).

स्टेनिस्लावस्की, एम. बी. (1974), 'द रिलेशन्शिप ऑफ एथनोआर्कोलॉजी, ट्रेडिशनल एंड सिस्टम आर्कीआलजी'. इन सी. बी. डोनान एंड सी. डब्ल्यू. कलोव्लो (संपा.), *एथनोआर्कीयोलॉजी,* मोनोग्राफ 4 इन्सट आफ आर्कीआ : यूसीएलए .

4.6 आपकी प्रगति की जांच के लिए उत्तर

1) पर्यावरणीय पुरातत्व को दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता हैः (ए) भू–पुरातत्व (जियोआर्कियोलॉजी) और (बी) जैव–पुरातत्व (बायोआर्कियोलॉजी)। जियोआर्कियोलॉजी में, "पर्यावरण" भौगोलिक पर्यावरण को संदर्भित करता है। यह स्थलाकृति, भूविज्ञान, भूतत्व, भूगोल की अवधारणाओं और अनुसंधान विधियों का उपयोग करता है। जैव पुरातत्वविज्ञान में,

"पर्यावरण" प्राकृतिक पर्यावरण को संदर्भित करता है। यह वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, मानवविज्ञान और इसी तरह की अवधारणाओं और अनुसंधान विधियों को उधार लेता है।

2) नृजाति–पुरातत्व पुरातात्विक रिकॉर्ड की समझ और व्याख्या में सहायता करने के लिए जीवित समाजों का अध्ययन है। नृजाति–पुरातत्व के दो उदाहरण हैं: (1) *कालाहारी रेगिस्तान के कुंग सैन* (2) *नुनामिउट एस्किमो* ।

3) कलाकृतियों के साथ प्रयोग करते समय आवश्यक मापदंड निम्नलिखित हैं:

   i) प्रयोगों में प्रयुक्त सामग्री स्थानीय स्तर पर प्रागैतिहासिक समाज के लिए उपलब्ध होनी चाहिए, जिसका अध्ययन किया जा रहा है;

   ii) विधियों को समाज की तकनीकी क्षमताओं के अनुरूप होना चाहिए। आधुनिक तकनीक को हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए;

   iii) परिणाम दोहराने योग्य होने चाहिए और उन परीक्षणों से युक्त होना चाहिए जो सुझाए गए निष्कर्षों की ओर ले जाते हैं।

4) रेनॉल्ड्स (1999) ने प्रयोगात्मक पुरातत्व में पांच प्रमुख प्रकार के प्रयोगों का उल्लेख किया है, जो नीचे दिए गए हैं:

   i) निर्माण

   ii) प्रक्रिया और कार्य प्रयोग

   iii) सतत अनुकरण (सिमुलेशन)

   iv) संभावित परीक्षण

   v) तकनीकी नवाचार